अशोक पाण्डेय

लेखक-परिचय

आप एक अवकाश प्राप्त प्राचार्य हैं। आप रूसी परिसंघ की राजधानी मॉस्को केंद्रीय विद्यालय में 1999 से लेकर 2002 तक पी.जी.टी. हिन्दी रहे हैं। साथ ही साथ भारतीय दूतावास मॉस्को के जवाहरलाल नेहरु कल्चरल सेंटर पर हिन्दी व्याख्याता के रूप में भी काम कर चुके हैं। 2010 में आप जापान की यात्रा कर चुके हैं। आप एक सच्चे जगन्नाथ भक्त हैं जिनकी विश्व प्रसिद्ध रथ यात्रा का श्री पुरी धाम से आँखों देखा हाल पूरे विश्व को पिछले लगभग 20 सालों से सुनाते आ रहे हैं। आपकी अद्वितीय हिन्दी रचना भारतीय संस्कृति को ओड़िशा की देन, रामराज्य, नव कलेवर और रथयात्रा, महाप्रभु जगन्नाथ और महाप्रसाद प्रकाशित रचनाएँ हैं। आप गोवर्द्धन पीठ परिषद्, पुरी धाम के संयुक्त सचिव हैं। आप आजीवन जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं। आपने पहली बार हिन्दी में महाप्रभु जगन्नाथ पर अपनी वेबसाईट खोली हैं, जिसका नाम है www.mahaprabhu.in

फोन: 08895267920 • E-mail: ashok.pandey.pandey630@gmail.com

ISBN 819037075-8
9788190370752

मूल्य: ₹ 50/- मात्र

भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय पुस्तक
महाप्रसाद
अशोक पाण्डेय

महाप्रसाद

भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय पुस्तक

लेखक:
अशोक पाण्डेय

महाप्रसाद

भारतीय संस्कृति की एक अद्वितीय पुस्तक

लेखक

अशोक पाण्डेय

प्रकाशकः

रामा पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली

जगत के नाथ श्री जगन्नाथ जी के बारे में विस्तार से जानने के लिए कृपया लॉगइन करें:

www.mahaprabhu.in

महाप्रसाद

© लेखक

आठवाँ संस्करण: 2014

मूल्य: ₹ 50/- मात्र

लेखक: अशोक पाण्डेय

ISBN: 978-81-903707-5-2

प्रकाशक: रामा पब्लिकेशन्स
एच-3/26, बंगाली कॉलोनी,
महावीर एन्क्लेव, नई दिल्ली-45
फोन: 09313553434, 09311353434
E-mail: ramapublications@gmail.com

MAHAPRASAD

© Author

8th Edition : 2014

Price : ₹ 50/- only

Author : **Ashok Pandey**

ISBN: 978-81-903707-5-2

Publisher : **Rama Publications**
H-3/26, Bengali Colony,
Mahavir Enclave, Palam,
New Delhi-110045
Ph.: 09313 55 3434, 09311 35 3434
E-mail: ramapublications@gmail.com

जय जगन्नाथ!

आभारी हूँ मैं...

कहते हैं कि भक्ति में ही सच्ची आध्यात्मिक शक्ति है और जानने वाले भी यह जानते हैं कि मन की शक्ति में ही सच्ची आध्यात्मिक भक्ति है और आप तो हमसे भी बेहतर जानते हैं:-

''हमको मन की शक्ति देना, मन विजय करे, दूसरों की जय से पहले खुद की जय करें।.....''

इसलिए सबसे पहले अपने इष्टदेव श्री जगन्नाथजी के प्रति मैं अपना पहला आभार निवेदित करता हूँ, जिन्होंने मुझे उनके विषय में लिखने की स्वयं प्रेरणा दी। दूसरा आभार मेरा जाता है उनके प्रथम सेवक श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी महाराज को, जो पुरी के गजपति हैं और हमारे प्रेरणास्रोत हैं। तीसरा आभार है मेरा, भारत के वास्तविक शिक्षाविद् एशिया की सबसे बड़ी संस्था 'कीट-कीस' के संस्थापक डॉ. अच्युत सामंत को, जिनका विदेह जीवन 'सादा जीवन और उच्च विचार' सदा हमारे भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा क्योंकि आप एक सच्चे जगन्नाथ-भक्त और हनुमान भक्त भी हैं। चौथा आभार है मेरा, दूरदर्शन केंद्र, भुवनेश्वर के निदेशक श्री बैकुण्ठ पाणिग्राही जी को, जिन्होंने सदा हमें प्रभु सेवा की ओर उन्मुख किया। आभारी हूँ मैं उसी केंद्र के, श्री दुर्गादत्त कानुनगो का, जिन्होंने महाप्रभु की सभी दुर्लभ तस्वीरें मुझे उपलब्ध कराईं। इस पुस्तक के प्रकाशन में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देने वाले दिल्ली के प्रकाशक, रामा पब्लिकेशन्स को, जिनके भगीरथ प्रयत्न से आनन-फानन में ही मेरी पुस्तक का सातवाँ संस्करण समय से पहले छप गया। मैं आभारी हूँ पुरी धाम के श्रीमंदिर प्रशासन का, जिनके सहयोग से मेरी पुस्तकें प्रशासन के सभी बिक्री केंद्रों पर आज उपलब्ध हैं।

अंत में, देश-विदेश के अपने समस्त जगन्नाथ भक्त हिंदी पाठकों के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरी पुस्तकों को आद्योपांत पढ़ने का कष्ट उठाया और अपना बहुमूल्य सुझाव मुझे दिया।

जय जगन्नाथ!

अशोक पाण्डेय

दिनांक: 1 जनवरी, 2014

प्रभु का आजीवन सेवक

भारत राष्ट्र के आध्यात्मिक दिव्य पुरुष पूज्यपाद स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती महाराज शंकराचार्य, पुरी धाम (ओडिशा) का नववर्ष 2014 का समस्त भारतवासियों के नाम पावन संदेश

पाश्चात्यजगत्के नववर्षके उपलक्ष्यमें उद्बोधन एवम् सन्देश

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, समृद्ध, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजकी संरचनामें विश्वकी मेधा-रक्षा-वाणिज्य और श्रमशक्तिका उपयोग एवम् विनियोग हो! विश्वको धर्मनियन्त्रित-पक्षपातविहीन-शोषणविनिर्मुक्त-सर्वहितप्रद शासनतन्त्र सुलभ करानेमें सत्पुरुषोंकी प्रीति तथा प्रवृत्ति परिलक्षित हो! सेवा और सहानुभूतिके नामपर किसी वर्गके अस्तित्व और आदर्शको विलुप्त करनेका षड्यन्त्र विश्वस्तरपर मानवोचित शीलकी सीमामें जघन्य अपराध उद्घोषित हो! विकासके नामपर पर्यावरणको विकृत और विलुप्त करनेके समस्त प्रकल्प निरस्त हों! स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके हितमें पाश्चात्य जगत्का नववर्ष विनियुक्त हो! पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन और आकाश सर्वशान्तिप्रद और सुखप्रद हों!

— निश्चलानन्दसरस्वती

— श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य-गोवर्द्धनमठ-पुरीपीठ

ओडिशा - भारत

पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती का संदेश मानवाधिकार पर

पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती ने अपने मानवाधिकार के संदेश में यह बताया कि सबके प्रति हित की भावना से स्नेह और सहानुभूति मानवोचित शील है। भारत के बहुसंख्यक वर्ग के अस्तित्व और आदर्श को विलुप्त करने वाले अधिनियम मानवाधिकार की सीमा में पारित तथा क्रियान्वित करने योग्य हों। जिस वर्ग का परंपरा प्राप्त भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव, त्यौहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह आदि दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातल पर सर्वोत्कृष्ट है केवल उस वर्ग से संबद्धता के कारण ही मानवाधिकार की सीमा में कैसे लांछित और तिरस्कृत करने योग्य माना जा सकता है? किसी वर्ग को और उससे संबद्ध व्यक्ति को राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक होने मात्र से मानवता तथा राष्ट्रीयता के लिए अभिशाप रूप किसी अधिनियम के अन्तर्गत उपद्रव करने की पूर्ण अथवा आंशिक स्वतंत्रता कैसे प्रदान की जा सकती है? भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 में जिस प्रकार पूर्वजन्म, ओंकार, स्वस्तिक, गोवंश और गंगा आदि आस्थान्वित सिख, जैन, बौद्ध को छल, बल, डंके की चोट से अल्पसंख्यक उद्घाषित कर हिंदुओं को अल्पसंख्यक बनाने का प्रकल्प आदि चलाया जा रहा है उसे आज बंद करने और निरस्त करने की आवश्यकता है। मानवता के पक्षधर क्रिश्चियन, मुस्लिम तथा कम्यूनिस्ट तंत्रों को भी ऐसे घातक तत्वों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

– अशोक पाण्डेय

परम पूज्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वतीजी की अनोखी पहल: श्री जगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव

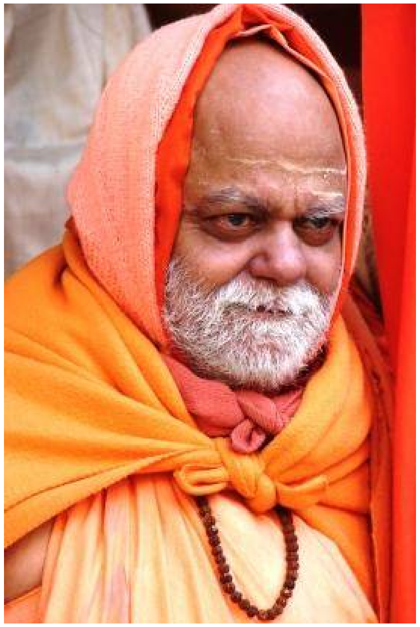

स्वामीजी की पहल पर पहली बार पुरी धाम में दिनांक 09 फरवरी, 2012 से दिनांक 14 फरवरी, 2012 तक विश्व के समस्त जगन्नाथ मंदिर प्रमुखों का 6 दिवसीय समागम हुआ जिसमें विश्व के लगभग 1000 साधु-संतों का अद्वितीय समागम हुआ। इस समागम का नाम दिया गया **'श्री जगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव'**। इसके आयोजन का उद्देश्य पूरे विश्व में जगन्नाथ संस्कृति का श्रीमद्भागवत कथा, रामकथा, श्रीकृष्ण कथा आदि की तरह जगन्नाथजी की कथा भी वर्ष भर कम से कम 5 दिवस, 7 दिवस, 9 दिवस और 11 दिवस तक जाने माने श्रीजगन्नाथ व्यास से कराई जाये। साथ ही साथ श्रीजगन्नाथ मंदिर की मान्य रीति-नीति की तरह ही श्री जगन्नाथजी की दिनचर्या, पूजा-पाठ, भोग और पर्व-त्यौहार आयोजित हो। विश्व प्रसिद्ध रथयात्रा, बाहुड़ा यात्रा और सोना वेष आदि के आयोजन की तारीख वहीं हों जो पुरी धाम के जगन्नाथ मंदिर की हर साल रहती हैं।

श्री जगन्नाथ मंदिर प्रशासन, पुरी धाम ने इस जिम्मेदारी को वहन किया जिसमें मार्गदर्शन मिला पुरी धाम के शंकराचार्य पूज्य पूज्य स्वामी श्री श्री निश्चलानंदजी सरस्वती का एवं पुरी के गजपति महाराज श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी का। सहयोगी संत-महात्माओं में पूज्य स्वामी नर्लिप्तानंद

सरस्वती, पूज्य बाबा चैतन्य चरण दास, पूज्य बाबा सच्चिदानंद दास, प्रो. डॉ. आलेख चरण सारंगी, पूज्य स्वामी परमहंस प्रज्ञानंद दास, पूज्य स्वामी माधवानंद सरस्वती, पूज्य स्वामी निगमानंद सरस्वती, पूज्य बाबा किशोरी चरण दास, पूज्य स्वामी परिसुधानंद, पूज्य स्वामी शिवचितानंद, पूज्य स्वामी धर्मप्रकाशानंद, पूज्य स्वामी असीमानंद सरस्वती, श्री प्रदीप्त कुमार महापात्र, (मुख्यप्रशासक, पुरी श्रीमंदिर), प्रो. डॉ. नीलकण्ठ पति जबकि मुख्य यजमान रहे उद्योगपति एवं सच्चे समाजसेवी श्री सुरेंद्र कुमार डालमिया।

इस अवसर पर एक स्मारिका का भी विमोचन किया गया। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित किया गया कि श्रीमंदिर प्रशासन पुरी की ओर से श्रीजगन्नाथजी की दिनचर्या एवं पूजन विधि आदि की एक मान्य रचना देवनागरी लिपि में प्रकाशित की जाय जिसके आधार पर पूरे विश्व के जगन्नाथ मंदिरों में श्रीजगन्नाथजी की पूजा आदि में एकरूपता बनी रहे। यह आयोजन पूरी तरह से कामयाब रहा।

भारत के अनन्यतम धाम पुरी धाम के शंकराचार्य एवं पुरी गोवर्द्धनपीठ के 145वें पीठाधीश्वर परम पूज्य श्रीजगतगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वतीजी महाराज का नववर्ष 2014 का समस्त भारतवासियों के नाम पावन संदेश

''संदेश नहीं मैं स्वर्ग का लाया, भूतल को स्वर्ग बनाने आया।''

स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी की ये पंक्तियाँ नई सदी के वास्तविक संन्यासी, मनीषी, विदेह, त्यागी, तपस्वी एवं भारतीयता की रक्षा करने वाले पुरी धाम के शंकराचार्य परम पूज्य श्रीजगतगुरु शंकराचार्य के साथ अक्षरशः चरितार्थ हो रही है।

स्वामीजी का यह भी मानना है–

''निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि-बलिदानी।''

स्वामीजी समष्टि के हित के लिए व्यष्टि का बलिदान चाहते हैं और यही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र भी है। आप सदा यह चाहते हैं कि भारत विश्व आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र बिंदु बना रहे। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य अर्थ और काम न हो। आपको जननी, जन्मभूमि से अटूट लगाव है। आपको भारतदेश की सुरक्षा, कल्याण, भारतीय संस्कृति को बचाये रखने एवं आध्यात्मिक चेतना को बचाये रखने की चिंता है।

आपका आविर्भाव आर्यावर्त की मिथिलांचल पावन धरा-धाम पर हुआ जहाँ पर विदेह राजा जनक, जनकनंदिनी श्री सीता, गौतम बुद्ध, कणादि, कुमारिल, मण्डन, वाचस्पति, शंकर मिश्र, उदयन, गणेश उपाध्याय, मैथिल कोकिल विद्यापति, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, उभयभारती आदि का आविर्भाव हुआ था। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध का हुआ था। आप जब 2 साल के थे तो रात के बारह-बारह बजे तक जगकर पढ़ते थे, आप 6 साल के बाल्यकाल से ही भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म से जुड़ गये। जब आप 10 साल के हुए तभी से आपका मन संन्यासी जीवन में रम गया और उसी समय आपने समस्त वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत पढ़ डाली। एक बार बचपन में आपने सपना देखा कि आपके गांव के समीप के भगवान श्रीकृष्ण मंदिर से भगवान का आभूषण चोरी हो गया है और सुबह जब देखा गया तो सचमुच भगवान का कीमती आभूषण चोरी हो गया था। कहते हैं कि आपके बाल्यकाल में ही भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं आपके सम्मुख प्रकट होकर आपके कंधों पर हाथ रखकर आपको अपना सखा स्वीकार किया था। कल क्या होने वाला है इसकी जानकारी आपको अपनी साधना और दिव्यशक्ति से हो जाती है। आप पिछले 50 सालों से महाप्रभु श्री जगन्नाथजी महाराज के देश के संस्कृति पुरुष रहे हैं। सहजता एवं वितरागी जीवन आपकी पहचान रही। आप भारतीय संस्कृति की पर्याय बन चुकी जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं। श्रीमंदिर में रथयात्रा, देवस्नानपूर्णिमा और बाहुड़ा यात्रा में प्रभु की प्रथम सेवा का पूर्ण अधिकार है। आप पुरी गोवर्द्धन पीठ के पीठाधीश्वर हैं जहाँ के मुख्य देव भगवान श्री जगन्नाथजी और माता विमलाजी मुख्य देवी हैं।

आप भारतीय आध्यात्मिक चेतना के पुरोधा, ऋग्वेद के अनुपालक, श्रीजगन्नाथ संस्कृति के यथार्थ आदर्श एवं भारतीय युवा विवेक के निर्माता हैं। आपने अपने एक प्रवचन में बड़ी विनम्रता, विलक्षणता एवं शालीनता के साथ यह बताया कि आज की शिक्षा व्यवस्था पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हो चुकी है जहाँ पर जीवन के शाश्वत जीवन मूल्यों,

नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो चुका है। आज की शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से अर्थ और काम तक सीमित होकर रह गई है। आज के बच्चे नहीं जानते कि भारतीयता क्या है और हमारे संस्कार क्या हैं? ऐसे में आज के युवावर्ग को अपने बड़े-बुजुर्गों का आदर करना, शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित साधु-संतों के प्रवचन आदि को सुनना चाहिए। उन्होंने बताया कि आज के प्रजातंत्र की अवधारणा बदल चुकी है। आज न वशिष्ठ जैसा गुरु है और न ही राम जैसा छात्र। ऐसे में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि आज के युवावर्ग को दिशाहीन होने से बचाने की है और यह तभी संभव है जब आज के युवा इस बात को स्वीकार करें कि उनका सर्वांगीण विकास भारतीयता को अपनाकर आगे बढ़ने में ही है। उन्होंने भारतीय संयुक्त परिवार की टूटती दशा पर चिंता व्यक्त करते हुए आज के अन्तरजातीय विवाह के बढ़ते प्रचलन को दोषी बताया। जैसा कि विदित हो कि स्वामीजी न केवल जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं अपितु भारतीय आध्यात्मिक चेतना के प्राण, भारतीय राष्ट्रीय विवेक के निर्माता भी हैं जिनके आचरण, व्यवहार एवं पारदर्शी उज्ज्वल व्यक्तित्व में समाज को बचाने की प्रेरणा समाहित है।

प्राप्त जानकारी के आधार पर पुरी गोवर्द्धनपीठ का निर्माण आज से लगभग 2500 साल पहले हो चुका था जबकि पुरी धाम के श्रीमंदिर का निर्माण 1215 में हुआ। आपकी चिंता आज के व्यक्ति, समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाजसेवा, सरकार, प्रजा, गुरु, शिष्य, शाश्वत जीवन मूल्य, नैतिक मूल्य, प्रजातांत्रिक मूल्य, योग साधना, ध्यान, चिंतन, मनन, वेदपाठ, गौरक्षा, साधु-संतों की सुरक्षा, भारत के तीर्थस्थलों की सुरक्षा एवं साफ-सफाई, कर्त्तव्यबोध, शक्तिबोध, व्यावहारिक ज्ञान, शिष्टाचार, सहयोग, मैत्री और सही संस्कार आदि की है।

अशोक पाण्डेय

पुरी गोवर्द्धन पीठ परिषद के संयुक्त सचिव

श्रीजगतगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वतीजी महाराज के प्रवचन के कुछ अंश

17 दिसंबर, 2012 को उद्योगपति, समाजसेवी श्री किशन लालजी भरितया के कटक निवासस्थल महानदी विहार में दिये गये आपके प्रवचन के कुछ अंश-

सर्व प्रथम उपस्थित सैकड़ों अनुयायियों द्वारा स्वामीजी की दिव्य चरण पादुका का पूजन हुआ। स्वामीजी की वंदना, गुरु-वंदना एवं जगन्नाथ स्वामी की वंदना के उपरांत स्वामीजी का अभिवादन मुख्य यजमान श्री किशनलाल भरितया तथा पुरी गोवर्द्धन पीठ परिषद के संयुक्त सचिव श्री अशोक पाण्डेय ने किया। स्वामीजी की अध्यात्म सेवा और देश-विदेश में उनकी आध्यात्मिक साधना और प्रवचनों का अधिक से अधिक लाभ विश्व मानवता को मिले ऐसी कामना दोनों अनुयायियों ने की। व्यासपीठ पर विराजमान जगतगुरु स्वामी निश्चलानंद सरस्वती ने बताया कि वे हाल ही में एक सप्ताह पूर्व नेपाल भगवान बुद्ध की जन्मस्थली के समीप रामनगर गये हुए थे, जहाँ पर उनके आध्यात्मिक प्रवचन को नेपाल के लगभग 3.5 लाख लोगों ने सुना जिनमें हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तीनों थे। नेपाल विश्व का एकमात्र ऐसा हिन्दू राष्ट्र है जहाँ पर लगभग 82 फीसदी हिन्दू रहते हैं। उनके साथ मंचासीन बौद्ध, जैन, सिख सभी संत, महात्मा और धर्मगुरुओं ने उनके प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुना।

स्वामीजी ने बताया कि नेपाल और भारत का रिश्ता काफी सुदीर्घ रहा है। आज भी पुरी धाम में नेपाल नरेश का श्रीजगन्नाथ मंदिर में दर्शन राजकीय सम्मान के साथ होता है। श्री जगन्नाथजी के शालिग्राम में

बहुतायत सहयोग नेपाल का होता है। उसी प्रकार नेपाल भगवान पशुपतिनाथ मंदिर में भी शंकराचार्य को शाही सम्मान का प्रावधान है।

आज किसी भी देश के सुशासन के लिए सुसांस्कृतिक तंत्र, सुसामाजिक तंत्र का होना नितांत आवश्यक है। उन्होंने बताया कि नेपाल में जितने भी संगठन हैं अत्यधिक की राय में नेपाल हिन्दू राष्ट्र के रुप में पूरी तरह विकसित हो जबकि विकास के नाम पर भारत में यह अवधारणा समाप्त होती नजर आ रही है। ऐसे में भारत के सभी हिन्दुओं को मिलकर एक हिन्दू चैनल चलाना चाहिए जहाँ से बाल-संस्कार, समाज-संस्कार, आदर्श संयुक्त परिवार संस्कार, भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा-संस्कार, गौरक्षा संस्कार, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवनोपयोगी संस्कार, कृषि संस्कार, पशुबल संस्कार के साथ साथ नियमित रामायण, महाभारत, पौराणिक कथाओं का नियमित प्रसारण किया जाये। गुरु वशिष्ठ, याज्ञवलक्य, चाणक्य और गुरु करपात्री जी जैसे गुरुओं के जीवन को बच्चों को दिखाया जाये। राम, कृष्ण, एकलव्य और नचिकेता जैसे शिष्यों के आदर्श को प्रदर्शित किया जाये जिनका पूरा लाभ भारत के भावी कर्णधारों और समाज को मिल सके। उन्होंने बताया कि नेपाल में जो सत्ता परिवर्तन हुआ है इसका आभास उनको पहले ही हो चुका था और नेपाल के पूर्व नरेश को दे चुके थे। आज भी उनकी इच्छा है कि नेपाल के समस्त हिन्दू संगठनों की एकजुटता बनी रहे। भारतीय परिप्रेक्ष्य का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि भारत में सुशासनतंत्र हो, जिसके लिए आवश्यकता है यहाँ के सामाजिक तंत्र और सांस्कृतिक तंत्र में एकजुटता की और सामंजस्य की।

उन्होंने बताया कि उनके व्यक्तिगत प्रयासों से दक्षिण में श्रीरामसेतु, अयोध्या में राममंदिर समस्या का समाधान हो पाया। उन्होंने बताया कि वे कभी मरने से नहीं डरते जबकि उनके ऊपर 22 बार मारने का प्रयास हो चुका है और दो बार उन्हें विष देने का प्रयास भी हो चुका है। उन्होंने बताया कि विकास के नाम पर जो कुछ भी विश्व में हो रहा है वह उचित नहीं है। उन्होंने बताया कि उनका पूरा जीवन भारतीय आदर्श आध्यात्मिक प्रचार-प्रसार एवं सांस्कृतिक धरोहर को बचाने में लगा

रहेगा। गौरतलब है कि स्वामीजी की अब तक विभिन्न विषयों पर कुल 75 रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

स्वामीजी भारतीय संस्कृति, भारतीय अध्यात्म, गौरक्षा, जीवन के शाश्वत जीवन मूल्यों एवं भारत की शाश्वत आदर्श सामाजिक व्यवस्था को बचाये रखने में अपना पूरा जीवन व्यतीत करते हैं। एक श्रोता के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने बताया कि एक शंकराचार्य के रूप में उन्होंने जो कुछ किया है वह पूरे भारत और विश्व के लिए अभूतपूर्व है चाहे वह श्रीराममंदिर निर्माण की बात अयोध्या में हो या श्रीरामसेतु की रक्षा की बात दक्षिण भारत के रामेश्वरम हो। चाहे धर्मांतरण पर रोक लगाने की बात हो या अन्तर्जातीय विवाह पर अंकुश लगाने की बात। चाहे बाल विवाह की बात हो या कन्याभ्रूण हत्या को रोकने की बात। चाहे गौरक्षा की बात हो या दलाईलामा के विचारों में परिवर्तन की बात। उन्होंने बताया कि दलाईलामाजी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बने हुए हैं।

नेपाल में बाबा गोरखनाथ के नाम पर गोरखा रेजिमेंट गठन और उनका नेपाल में अजातशत्रु के रूप में जाना यह सिद्ध करता है कि पिछले 20 सालों से वे अपने समस्त भौतिक एवं सांसारिक सुखों का त्यागकर मानवता की रक्षा में सदा लगे हुए हैं। आज जिस तरह की असुरक्षा का माहौल देश के साधु-संतों, महात्माओं एवं धर्मगुरुओं का है वह सर्वविदित है। ऐसी स्थिति में देश के लोगों को आपसी सामंजस्य की आवश्यकता है। पुरी धाम में गजपति महाराज से बातों-बातों में वे कहा करते हैं कि आप तो क्षत्रिय होकर भी हमेशा शांति, शांति, शाति और शांति पुकारतें हैं लेकिन मैं तो अपनी जान की परवाह किये बिना भारतीय अध्यात्म की रक्षा के लिए ब्राह्मण होकर भी क्रांति, क्रांति, क्रांति पुकारता हूँ और इसे ही अपने जीवन का संकल्प मानकर साल के कम से कम 250 दिनों तक ओडिशा से बाहर रहकर देश-विदेश में इसे बचाने का प्रयास करता हूँ। अब तो हमारे अनुयायियों को समझ लेना चाहिए कि मैं उनके के लिए क्या करता हूँ और वे भारत के राष्ट्र निर्माण में उनका कितना सहयोग करते हैं।

अशोक पाण्डेय

पुरी गोवर्द्धन पीठ परिषद के संयुक्त सचिव

महाप्रभु जगन्नाथ के एक अनन्य भक्त का संकल्प आजीवन "देने की कला" का प्रचार

17 मई, 2013 से

बात 1969 की है। एक दिन सुबह करीब 5.00 बजे चार साल का एक शिशु यह नहीं समझ पा रहा था कि क्यों उसके परिवार के सभी सदस्य आँसू बहा रहे हैं? वे पूरी तरह क्यों निस्तब्ध एवं शोक संतप्त हैं? वह नादान बालक यह नहीं समझ पा रहा था कि वह करे तो क्या करे? नहीं करे तो क्या नहीं करे? सबको उदास देखकर उसके भी चहरे पर उदासी थी। लेकिन अन्ततोगत्वा वह समझ गया कि उसके पिताजी का असामयिक निधन हो चुका है जबकि वह नहीं जानता था कि 'सांसारिक निधन' क्या होता है? यह उसकी समझ से परे की बात थी। उसके पिताजी का निधन एक दु:खद रेल दुर्घटना में हो गया था। पिताजी उसकी विधवा माँ और उसके कुल 7 भाई-बहनों को असहाय दयनीय हालात में छोड़कर काल-कवलीत हो चुके थे। उस घर का सबसे छोटा सदस्य मात्र एक माह का था जबकि सबसे बड़ा सदस्य 17 साल का। उसके पिताजी एक कारखाने में एक साधारण कर्मचारी थे जो अपने पीछे परिवार के कुल 8 सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कुछ भी जमा पूँजी छोड़कर नहीं गये थे। वह शिशु ओडिशा प्रदेश के एक दूर-दराज गाँव में घोर गरीबी की दलदल में पला। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने उसको पल-पल जीना सिखाया। वह शिशु लाचार होकर अपने बाल्यकाल के आनंद का परित्याग कर पाँच साल की उम्र में अपने

परिवार के भरण-पोषण का एकमात्र सहारा बन गया। वह यहाँ-वहाँ स्वेच्छापूर्वक कुछ शारीरिक श्रम कर, अर्थोपार्जन कर अपनी विधवा माँ की सहायता में लग गया। पाँच की उम्र में ही उस बालक को जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने स्वावलंबी बना दिया। अपने श्रम की कमाई से अपनी विधवा माँ की आँखों के आँसू पोंछे। अपनी छोटी बहन को उसकी गोद में सोने जैसा सुख दिया। सात साल की उम्र में ही वह बालक कमाऊ बन गया। वह अपने पसीने की प्रतिदिन की कमाई का एक रुपया स्वयं रखता और बाकी अपने चार सहपाठियों पर उनके नाश्ता-चाय पर खर्च करता था। यही नहीं, समय-समय पर वह अपने गांव के नजदीक के बाजार से सब्जी और रोजमर्रे की सामग्री लाने में अक्सर अपने गांववालों की भी सहायता करता था।

कालांतर में बालक बड़ा हुआ। वह भुवनेश्वर के उत्कल विश्वविद्यालय से एम.एससी. कर रहा था। एक दिन उसके सबसे बड़े भाई ने उसे कॉलेज पिकनिक पर जाने के लिए कुल 300 रुपये दिये, जिसने वह अपने उस साथी को दे दिये जो कालेज पिकनिक पर जाना चाहता था लेकिन उसके पास पैसे नहीं थे। देने की कला में निपुण उस युवा ने उत्कल विश्वविद्यालय भुवनेश्वर से रसायन विज्ञान में एम.एससी किया। स्थानीय कॉलेज में एक व्याख्याता की नौकरी की। अपने व्यक्तिगत सुखों का त्यागकर अपने जरुरतमंद सहपाठियों को आर्थिक सहायता देने एवं अपने परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण व उनको पढ़ाने के साथ-साथ प्राइवेट ट्यूशन भी करता। यह बात 1987-1997 की है।

वह दूरदर्शी युवा अपनी कुल जमा पूँजी 5000 रुपये, जो उस वक्त की लगभग 100 अमरीकी डॉलर के बराबर थी, उससे 1992-1993 में किराये के मकान में अपनी दो संस्थाएँ खोल लीं। आज उस उत्साही और त्यागी युवा की दो संस्थाएँ जिनमें एक कीट तकनीकी विश्वविद्यालय है जहाँ पर आज लगभग 21,000 छात्र पूरे भारत और अनेक देशों के पढ़ते

हैं। आज कीट भारत की एक गौरवशाली तकनीकी संस्था है। दूसरी संस्था कीस आज पूरे विश्व की सबसे बड़ी अनोखी संस्था बन चुकी है जहाँ पर विश्व के सबसे बड़े आदिवासी आवासीय विद्यालय में कुल 20,000 आदिवासी बच्चे समस्त अत्याधुनिक आवासीय सुविधाओं के साथ रहते हैं और के.जी. से लेकर पी.जी.तक नि:शुल्क पढ़ते हैं। कीस का लक्ष्य है भारत के कुल 10 मिलियन आदिवासी बच्चों को 2020 तक पूरी तरह से शिक्षित बनाना।

जो अनाथ बालक स्वयं घोर आर्थिक संकटों में पला-बढ़ा, वह अपने गांव को भी आज भारत का एक आदर्श गाँव बना चुका है, जहाँ पर आज शहर की तमाम सुविधाएँ उपलब्ध हैं। सच तो यह भी है कि उस उत्साही विदेह युवा ने कला, संस्कृति, फिल्म, साहित्य, अध्यात्म और जीवन के अनेकानेक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को अपने ही बलबूते पर समृद्ध बना दिया है। वह कर्मयोगी युवा आज प्रति माह अपने कुल 40 गरीब दोस्तों को रोजगार दिलाने में सहायता करता है जबकि

प्रतिमाह अपने अन्य 40 साथियों को अपनी ही विश्व की दो अनोखी संस्थाओं में नौकरी देता है। वह व्यक्ति जिसने सबके लिए इतना कुछ किया, इतना कुछ दिया, वह स्वयं एक सामान्य व्यक्ति का औसत जीवन जीता है। दो कमरे वाले एक किराये के मकान में रहता है। उसके नाम पर आज भी न कोई बैंक खाता है और न ही कोई बैंक बैलेंस। वह आज भी बैचलर लाइफ जी रहा है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है बिना किसी जाति, लिंग, धर्म के भेद-भाव के बिना हजारों गरीब और असहाय बच्चों की सहायता करना। आर्थिक सहायता करना उसका शौक है। गरीब, लाचार और बेबस बच्चों के चेहरे पर उसे साक्षर बनाकर मुस्कुराहट लाना है। उस व्यक्ति को देने की कला में विश्वास है, शौक है और 17 मई, 2013 से इस ''देने की कला'' का वास्तविक प्रचारक बनकर आजीवन कार्यरत है। सच तो यह भी है कि उस असाधारण व्यक्तित्व के धनी सादगी से परिपूर्ण महामानव को देने की कला विरासत में मिली है जिसे वह मौन रूप में अपने बाल्यकाल से सीखा और अपनाया। वह व्यक्ति जिसका पारदर्शी व्यक्तित्व पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय एवं वंदनीय बन चुका है वह कोई और नहीं अपितु कीट-कीस के संस्थापक डॉ. अच्युत सामंत हैं, जिन्हें दुनिया आज निर्विवाद रूप में एक दूरदर्शी शिक्षाविद, विश्व आदिवासी समुदाय का जीवित मसीहा, विश्व का सबसे बड़ा नि:स्वार्थ सच्चा करार कर चुका है और ये कीट-कीस के संस्थापक के साथ-साथ कीस फाउण्डेशन इंडिया और कीस फाउण्डेशन यू के आजीवन संस्थापक हैं।

रूपांतरण: अशोक पाण्डेय

01 जनवरी, 2014

विषय-सूची

- यह जगन्नाथ पुरी है 21
- जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा 30
- महाप्रसाद 40
- महायोगी और महाभोगी 45
- विश्व की सबसे बड़ी पाकशाला 51
- जगन्नाथ जी के विभिन्न वेश 58
- स्कन्दपुराण में जगन्नाथ जी 62
- महाप्रभु का नव कलेवर 73
- महाप्रभु जगन्नाथ की अपने भक्तों पर कृपा 84
  - जयदेव पर महाप्रभु की कृपा 84
  - देवर्षि नारद पर महाप्रभु की कृपा 85
  - इन्द्रद्युम्न पर महाप्रभु की कृपा 86
  - बड़े भाई बलभद्र पर महाप्रभु की कृपा 91
  - चण्डालिका पर महाप्रभु की कृपा 93
  - सदना कसाई पर महाप्रभु की कृपा 93
  - भक्तकवि सालबेग पर महाप्रभु की कृपा 95
  - रामभक्त तुलसी पर महाप्रभु की कृपा 96
  - पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव पर महाप्रभु की कृपा 97
  - रघु केवट पर महाप्रभु की कृपा 98
  - बंधु महांति पर महाप्रभु की कृपा 99
  - भक्त गंगाधर दास पर महाप्रभु की कृपा 100
  - दासिया बाऊरी पर महाप्रभु की कृपा 101
- कुछ प्रमुख स्थल 103

यह जगन्नाथ पुरी है

जगन्नाथपुरी– भारत के चार धामों में से एक धाम जगन्नाथपुरी है। इसे श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तम, शंखक्षेत्र, नीलाद्रि, मर्त्य बैकुण्ठ नीलांचल, दशावतार क्षेत्र, जमनिका तीर्थ, कुशास्थली और जगन्नाथ धाम के नाम से जाना जाता है। यहां पर भगवान शिव और देवी के अनेक मंदिर हैं। यहां पर मठों की संख्या अनन्त है। आज यह सैलानियों का स्वर्ग बन गया है। पुरी एक धर्म कानन है। महाप्रभु जगन्नाथ यहीं पर अन्न का भोग ग्रहण करते हैं।

श्रीमंदिर का निर्माण– जगन्नाथ पुरी के श्रीमंदिर का निर्माण गंगवंश के प्रतापी राजा चोलगंग देव ने 12वीं शताब्दी में किया था। यह मंदिर लगभग 1000 वर्ष पुराना है। इसकी ऊंचाई 214 फीट और 8 इंच है। इस मंदिर के चारों तरफ एक दीवार है, जिसे मेघनाद प्राचीर कहते हैं। मंदिर के चार भाग हैं– विमान, जगमोहन, नाटमण्डप और भोगमण्डप। श्रीमंदिर के चार महाद्वार हैं– पूर्व दिशा में सिंहद्वार, पश्चिम दिशा में व्याघ्र द्वार, उत्तर दिशा में हस्तीद्वार और दक्षिण में अश्वद्वार है।

श्रीमंदिर में प्रतिदिन अपनाई जानेवाली पूजा विधि को गोपाल–अर्चना विधि कहते हैं। पूजा प्रतिदिन पांच बार होती है, दिन में तीन बार और रात में दो बार। महाप्रभु जगन्नाथ, बलभद्रजी, सुभद्राजी और सुदर्शन श्रीमंदिर में जहाँ पर विराजमान हैं, उसे रत्नवेदी कहते हैं जो 16 फीट लम्बी और 4 फीट ऊंची है। इस वेदी पर बायें से दायें श्री बलभद्रजी, देवी सुभद्रा, श्रीजगन्नाथ जी एवं सुदर्शन के विग्रह हैं।

मेघनाद प्राचीर– श्रीमंदिर के चारों तरफ एक ऊँची दीवार है जिसे मेघनाद प्राचीर कहा जाता है। इसकी ऊंचाई 20 फीट से 24 फीट है। इसका निर्माण 1448 में राजा कपिलेन्द्र देव ने किया था।

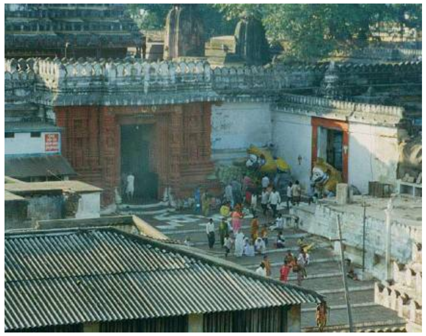

श्रीमंदिर के महाद्वार– श्रीमंदिर के चार महाद्वार हैं जो अलग-अलग दिशाओं में खुलते हैं। इनमें सबसे बड़ा महाद्वार है- सिंहद्वार जो पूर्व दिशा में खुलता है और यह धर्म का प्रतीक माना जाता है। पश्चिम दिशा के महाद्वार को व्याघ्रद्वार कहा जाता है और यह वैराग्य का प्रतीक है। दक्षिण दिशा की ओर खुलने वाले महाद्वार का नाम अश्वद्वार है और यह ज्ञान का प्रतीक माना जाता है और उत्तर दिशा की ओर खुलने वाला महाद्वार हस्तीद्वार कहलाता है और इस ऐश्वर्य का प्रतीक माना जाता है।

नीलचक्र एवं पतितपावन बाना– श्रीमंदिर के ऊपरी भाग में गुंबज के ऊपर नीलचक्र है, जिसके ऊपर पतितपावन बाना हमेशा लहराता रहता है। नीलचक्र अष्ट धातु से बना होता है। इसकी परिधि 36 फीट और ऊंचाई 11 फीट 8 इंच है। पतितपावन बाना पीले रंग का है जो 15 फीट का होता है।

श्रीमंदिर की पाकशाला एवं महाप्रसाद– श्रीमंदिर की पाकशाला संसार की सबसे बड़ी पाकशाला है। यहां पर एक बार में 45 मिनट में 10,000 लोगों का प्रसाद बन सकता है। इसमें 600 रसोइये हैं, 24 घण्टे 200 अग्निकुण्ड जलते रहते है। महाप्रसाद पूर्व प्रसाद रूप में दूध, दही, चावल, नारियल, चीनी, फल, सब्जी, दाल आदि से 56 प्रकार के भोग तैयार किये जाते हैं और महाप्रभु जगन्नाथ को निवेदित करने के उपरांत

जब माता विमला को निवेदित किया जाता है, तब वह प्रसाद महाप्रसाद बन जाता है।

महाप्रसाद अपने आप में आयुर्वेद सम्मत तथा स्वास्थ्यप्रद होता है। यह सभी प्रकार की बीमारियों को दूर करता है। जगन्नाथजी की ऐसी महिमा है कि यहां से कोई भी भक्त महाप्रसाद पाये बिना वापस नहीं लौटता है।

अरुण स्तम्भ– सिंहद्वार के सामने अरुण स्तम्भ है। ऐसा कहा जाता है कि श्रीमंदिर के सिंहद्वार के सामने की 22 सीढ़ियों की ऊंचाई पर 34 फीट का यह स्तम्भ, जो सूर्यदेव का वाहन है, हाथ जोड़े महाप्रभु की रक्षा करता हुआ खड़ा है। मराठा शासन काल में पुरी के नरेश श्रीदिव्यसिंहदेवजी ने 14वीं शताब्दी में इसे कोणार्क से पुरी धाम लाये। ऐसा भी कहा जाता है कि यह स्तम्भ नीलगिरि पर्वत की ऊंचाई की पहचान है। सेवायतों का मानना है कि सूर्यदेव की पहली किरण महाप्रभु के चरण-कमल को सबसे पहले धोती हैं।

महोदधि– श्रीमंदिर की दक्षिण-पूर्व दिशा में समुद्र अवस्थित है। इसे महोदधि/बंगाल की खाड़ी कहते हैं। लहरों के सेवन के ख्याल से इसे स्वर्ण समुद्र तट के नाम से जाना जाता है। यहां पर एक घाट है जिसे स्वर्गद्वार कहा जाता है। ऐसा विश्वास है कि पुरी में मरने वाले किसी व्यक्ति का दाह संस्कार अगर स्वर्गद्वार में किया जाता है तो उस व्यक्ति की आत्मा भव-बंधन से मुक्त हो जाती है। समुद्र के किनारे सूर्योदय की शोभा अति मोहक होती है। हर रोज हजारों सैलानी यहां पर स्नान करते हैं। वेलाभूमि पर प्रतिवर्ष वेलाभूमि महोत्सव मनाया जाता है। जिसमें देश-विदेश के अनेक कलाकार हिस्सा लेते हैं।

मौसी मां मंदिर– यह मंदिर बड़दण्ड पर ही है और यह गुण्डीचा के रास्ते में पड़ता है जिसे मौसी मां मंदिर कहते हैं। यहाँ पर प्रभु पुड़ा पीठा

ग्रहण करते हैं। रथयात्रा के समय चलता हुआ रथ गुण्डीचा मंदिर की ओर कुछ देर के लिए वहां रूक जाता है और रथ पर ही महाप्रभु को पोड़पीठा निवेदित किया जाता है। तब वे खुशी-खुशी आगे बढ़ते हैं।

गुण्डीचा मंदिर– श्रीमंदिर से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में श्रीगुण्डीचा मंदिर है। महाप्रभु जगन्नाथजी की रथयात्रा से बाहुड़ा अर्थात् वापसी यात्रा यहीं पर होती है। श्रीमंदिर की रीति-नीति के अनुसार यहां पर महाप्रभु की पूजा होती है। राजा इन्द्रद्युम्न की रानी गुण्डीचा के नाम पर इसका नाम गुण्डीचा रखा गया है। यह मंदिर 430 फीट लम्बा और 320 फीट चौड़ा है।

पुरी धाम के मठ– पुरी में लगभग 169 मठ हैं। इनकी स्थापना का एक मात्र उद्देश्य जगन्नाथ संस्कृति की सुरक्षा एवं उसका प्रचार-प्रसार करना है। साथ ही साथ गरीब विद्यार्थियों को भोजन और आश्रय प्रदान करना तथा साधु-संतों की सेवा करना और बाहर से आने वाले तीर्थ यात्रियों का सत्कार करना है। पुरी धाम का सबसे पुराना मठ अंगिरा और भृगु आश्रम मठ हैं।

गोवर्द्धन मठ– आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित देश के चार मठों में से एक मठ भारत के पूर्वी क्षेत्र में यहीं पर अवस्थित है। यहां पर गोवर्द्धन नाथ जी की पूजा सालों से की जा रही है। यहाँ पर एक यज्ञ कुण्ड है। भगवान शिव और अर्द्धनारीश्वर के दर्शन भी यहाँ पर किये जाते हैं। जगन्नाथ मंदिर से समुद्र के किनारे जाते समय स्वर्गद्वार के रास्ते में यह मठ आता है।

भगवान अलारनाथ मंदिर– पुरी से लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर ब्रह्मगिरि में भगवान अलार नाथ का मंदिर है। यह प्रकृति के खुले वातावरण में शांत एवं एकांत वातावरण में अवस्थित है, जहाँ जगन्नाथ

भक्तगण उस समय जाया करते हैं जब भगवान जगन्नाथ बीमार होते हैं, जब वे अणसरगृह में होते हैं और श्रीमंदिर में उनके दर्शन पर पाबंदी लगती होती है। ऐसा कहा जाता है कि वहाँ अलारनाथजी के दर्शन हेतु श्री चैतन्य महाप्रभु भी आये थे। यह एक वैष्णव मंदिर है। यहाँ पर खास प्रकार की खीर पकाई जाती है और महाप्रभु को निवेदित की जाती है।

कोणार्क– कोणार्क का सूर्यमंदिर विश्व विख्यात है। इसका निर्माण सन् 1250 ई. में उत्कल के सूर्यवंशी नरेश लांगुला नरसिंह देव ने किया था। 1200 शिल्पियों की कड़ी मेहनत और 12 वर्ष की निश्चित अवधि में इसे बनाया गया था। आज भी यह उत्कल के पूर्व गौरव और यश की याद दिलाता है। यहां पर नवग्रह मंदिर भी हैं। ये विग्रह अत्यंत सुन्दर और मोहक हैं। यहां पर एक म्यूजियम भी है। यह मंदिर आज भी करोड़ों दर्शकों के मन में कोतूहल पैदा करता है। इससे दो किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रभागा तीर्थ है। यहां पर लोग सूर्योदय के दृश्य का आनन्द लेते हैं।

पिपली एवं पटचित्र– पिपली गांव भुवनेश्वर से पुरी जाने के रास्ते में आता है और यह उत्कल की हस्तकला और कारीगरी के लिए विश्व विख्यात है। यहाँ से देश-विदेश में चन्दवा, हैंडबैग, शो पीस, गार्डेन छाता, पटचित्र और ड्रॉईंग रूम की दीवारों को सजाने के लिए पौराणिक कथाओं आदि पर आधारित चित्र का हस्त निर्माण देखते ही बनता है। पर्यटक पुरी-कोणार्क आते और जाते समय अपने ईष्ट-मित्रों के लिए यहीं से ओड़ीशा का उपहार खरीदते हैं। यहाँ पास ही में दो और भी गांव हैं– हरिराजपुर और रघुराजपुर, जहाँ घर-घर में हस्तकला का काम होता है। यहां के कारीगरों की सबसे बड़ी विशेषता है कि ये ताड़पत्रों पर अपनी अद्वितीय कारीगरी का नमूना दिखाते हैं और देखकर ग्राहक मंत्रमुग्ध हो

जाते हैं। यहां के पटचित्र की मांग आज देश-विदेश में अत्यधिक है।

श्री जगन्नाथ जी और उनकी जगन्नाथपुरी– भारत एक आध्यात्मिक देश है जहां पत्थरों में भी ईश्वर बसते हैं। भारतीय धर्म आस्था और विश्वास की नींव पर आधाारित है। कहते हैं- 'मानो तो देव नहीं तो पत्थर।' लेकिन इस देश के पूर्वी हिस्से में बंगाल की खाड़ी से सटा एक ऐसा प्रदेश है जिसे भारत का एक प्रदेश ही नहीं कहा जाता है बल्कि उसे जगन्नाथजी का देश कहा जाता है। इसकी चर्चा वेदों, पुराणों, उपनिषदों में भी है जिनमें प्रमुख हैं- स्कन्द पुराण, मत्स्य पुराण एवं ब्रह्मपुराण। यही नहीं रामायण और महाभारत में भी जगन्नाथजी का उल्लेख मिलता है।

पौराणिक युग में जगन्नाथपुरी को नीलांचल, नीलगिरि, नीलाद्रि, पुरुषोत्तम, श्रीक्षेत्र, शंखक्षेत्र एवं जगन्नाथ धाम के नाम से जाना गया है।

भारत के चार धाम देश के चार अलग-अलग दिशाओं में अवस्थित है। जैसे- उत्तर में बदरीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पश्चिम में द्वारका तो पूर्व में पुरी धाम। कहते हैं कि जगन्नाथजी बदरीनाथ में स्नान करते हैं, द्वारका में श्रृंगार करते हैं, जगन्नाथपुरी में अन्न का भोग करते हैं और रामेश्वरम में शयन करते हैं।

यह भी कहा जाता है कि जगन्नाथजी विष्णु के अवतार हैं और विष्णुजी की पहचान है—शंख, चक्र, गदा, पदम् और इस बात को सत्य रूप में स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होती क्योंकि यहाँ ओड़ीशा में भुवनेश्वर को चक्रक्षेत्र, जाजपुर को गदा क्षेत्र, कोणार्क को पदम् क्षेत्र और पुरी को शंख क्षेत्र के रूप में माना जाता है और यह भी कहा जाता है कि जब तक तीर्थ यात्री इन चारों क्षेत्रों के दर्शन नहीं कर लेते तब तक पुरी धाम की उसकी यात्रा अधूरी ही मानी जाती है।

ऐसी मान्यता है कि पुरी में जगन्नाथजी नीम की लकड़ी/दारु के देव के रूप में पूजे जाते हैं। पता लगाने पर पता चलता है कि आदिवासी समुदाय आरंभ से ही दारु के रूप में ही अपने इष्टदेव की पूजा करते रहे

हैं इसीलिए जगन्नाथजी पुरी में नीलांचल पर्वत पर दारु ब्रह्म के रूप ही सर्वप्रथम पूजे जाते थे और इसका प्रमाण है विश्ववसु, जो जगन्नाथजी की पूजा दारुब्रह्म के रूप में करता था। उस समय उन्हें अन्न का भोग नहीं निवेदित किया जाता था अपितु फल का भोग ही विश्ववसु निवेदित करता था। बाद में बारहवीं सदी में गंगवंश के प्रतापी राजा चोलगंगदेव ने वर्तमान श्रीमंदिर का निर्माण किया जो 214 फीट 8 इंच ऊंचा है और यह ओड़ीशा का सबसे ऊँचा जगन्नाथ मंदिर है। यह मंदिर उत्कल प्रदेश के स्थापत्य एवं मूर्तिकला का बेजोड़ उदाहरण है, जिसे पंचरथ आकार का माना जाता है। इस मंदिर में अनेक देव-देवियों के भी मंदिर हैं जैसे- काशी विश्वनाथ एवं विमला देवी आदि के मंदिर। मंदिर की बाहरी दीवारों को मेघनाद प्राचीर तथा भीतरी दीवारों को कुर्मबेड़ा कहा जाता है। अगर किसी भक्त के पास श्रीमंदिर में जाकर महाप्रभु के दर्शन के लिए समय नहीं होता है तो वह सिंहद्वार के सामने खड़ा होकर सामने पतितपावन के दर्शन कर महाप्रभु का आशीर्वाद ग्रहण करता है।

मंदिर के चार परकोटे हैं जिन्हें भोग मण्डप, नाट्य मण्डप, जगमोहन और विमान के नाम से जाना जाता है।

सिंहद्वार के ठीक सामने अरुण स्तंभ है जिसकी ऊंचाई 34 मीटर है और इसे चौदहवीं सदी में कोणार्क से पुरी लाया गया था। इसके सामने उत्तर दिशा में एक विशाल सड़क है जिसे बड़दाण्ड कहा जाता है और इसी बड़दाण्ड पर प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल द्वितीया यानी रथयात्रा का इंतजार रहता है जिस पर चलकर ही जगन्नाथ जी साल में एक बार अपनी मौसी के घर जाते हैं, गुण्डीचाघर जो सिंहद्वार से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में अवस्थित है। इस बड़दाण्ड की चार अलग-अलग दिशाओं में चार साही हैं- डोलमंडी साही, हरचंडी साही, चुडंग साही और बाली साही।

जगन्नाथ की दिनचर्या– जैसा कि सर्व विदित है कि श्री जगन्नाथजी महाराज एक सामान्य मानव की तरह ही अपनी दिनचर्या

शुरू करते हैं और रात को सोते हैं। यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि जब जगन्नाथजी की बात होती है तो तीनों ही विग्रह उसमें समाहित हैं जैसे बड़े भाई बलभद्रजी और छोटी बहन सुभद्राजी। इनकी दिनचर्या 5 बजे सुबह से शुरू होकर 1 बजे रात तक चलती है जिसका वर्णन निम्न है :

1. द्वार फीटा	9. रोसा होम	17. मध्यान पाहूड़
2. भीतर सोधा	10. सूर्य पूजा	18. पाहूड़ फीटा
3. मंगल आरती	11. द्वारपाल पूजा	19. संध्या धूप
4. मैलम	12. गोपाल वल्लभ भोग	20. मैलम
5. अवकाश	13. सकल धूप	21. चंदनलागी
6. अवकाश मैलम	14. मैलम	22. बड़सिंगार वेष
7. सहन मेला	15. भोगमण्डम भोग	23. बड़सिंगार धूप
8. वेषलागी	16. मध्याह्न धूप	24. खाटसेज लागी

सुलाने के लिए देवदासी नृत्य या महरी नृत्य आदि की व्यवस्था होती है। इनमें पाँच प्रकार की देवदासियाँ- नचूनी, भीतरगुणी, बाकर गुणी, पटौरी आदि हैं। शयन से पूर्व पूरे श्रीमंदिर परिसर को धोया जाता है, साफ किया जाता है और श्रीमंदिर के पट को बंद कर दिया जाता है। अगले दिन ठीक पाँच बजे सिंहद्वार खोला जाता है। श्रीमंदिर में रत्नवेदी पर श्री जगन्नाथजी, सुभद्राजी और बलभद्रजी के साथ ही साथ सुदर्शन और भूदेवी और श्रीदेवी की मूर्तियां भी होती हैं। श्रीमंदिर के प्रसाद को साधारण प्रसाद के रूप में न लेकर महाप्रसाद के रूप में, एक अद्वितीय अनुग्रह के रूप में सेवन किया जाता है क्योंकि यह महाप्रसाद आयुर्वेद सम्मत और स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। यह महाप्रसाद सामाजिक संबंध की नींव माना जाता है। इसे दोस्ती का पैगाम माना जाता है। इसे साक्षी एवं प्रमाण के रूप में माना जाता है। यह धार्मिक अनुष्ठानों तथा शादी-विवाह के अवसर पर पवित्र प्रीतिभोज का प्रतीक है। इसे सारी बीमारियों को दूर करने वाला रामबाण औषधि भी कहा जाता है।

सेवायत

श्री जगन्नाथ जी की सेवा, पूजा और अर्चना के लिए सैकड़ों वर्षों से ''सेवायत'' अथवा सेवक रखने की परम्परा है। ये सेवक लगभग 36 प्रकार के हैं। श्रीमंदिर के सत्व लिपि ग्रन्थ में 119 प्रकार के सेवकों का वर्णन है। वास्तव में श्री जगन्नाथ जी के सेवकों की संख्या बहुत ज्यादा है। ये सेवक श्री जगन्नाथ जी की सेवा-पूजा करते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी से इसे ये अपना परम कर्त्तव्य मानकर यथाविधि अपने कर्तव्य का पालन करते आ रहे हैं। ये सेवक श्रीमंदिर के साथ-साथ इस मन्दिर के अंतर्गत अन्य मन्दिरों में स्थित देव-देवियों की पूजा-अर्चना आदि भी करते हैं।

प्रत्येक सेवक के लिए अलग-अलग सेवा-कार्य होता है। नियमानुसार प्रत्येक सेवक को सिर्फ अपना सेवाकार्य करना पड़ता है। सेवकों को उनके सेवाकार्य के लिए वेतन देने का विधान नहीं है। श्री जगन्नाथ जी और अन्य देवियों की पूजा, अर्चना, भोग, प्रसाद आदि से प्राप्त आय को सेवक आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं। दो प्रकार की सेवाएँ हैं, मुख्यत: राज सेवा और अन्यान्य सेवाएँ। सेवकों की संख्या लगभग 6,000 है।

पुरी के गजपति महाराज जी श्रीमंदिर के प्रथम और प्रधान सेवक हैं। रथयात्रा के समय वे तीनों रथों को सोने की झाड़ू से साफ करते हैं। नव कलेवर के समय महाराज के हाथों से सुपारी ग्रहणकर दइता और ब्राह्मण दारु (काष्ठ) की खोज में निकलते हैं। श्रीमंदिर के प्रमुख सेवकगण—राजगुरु, पाटयोषी, महापात्र, तलिछ, महापात्र, भंडार मेकाप, पालिआ मेकाप, पुरोहित, मुदिरथ, पुष्पालक, बड़ पण्डा, महाजन, प्रतिहारी, खुटिया, पति महापात्र, गरावडु, विमानवडु, दइता, गोछिकार, सुना गोस्वामी, महासुआर, पाइक, रोष पाइक, पुराण पंडा, चित्रकार, रूपकार, घंटुआ आदि हैं।

जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा

ओड़ीशा प्रदेश की पुरी धाम में प्रतिवर्ष निकलनेवाली रथयात्र महाप्रभु जगन्नाथ की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय यात्रा मानी जाती है। संसार में शायद ही इससे बड़ी कोई यात्रा कहीं और आयोजित होती हो। इस अवसर पर विश्वभर के लाखों श्रद्धालु भक्त पुरी आते हैं और जगन्नाथजी के दर्शनकर अपने मानव जीवन को सार्थक बनाते हैं। रथ यात्रा विश्व मानवता को प्रतिवर्ष शांति, सद्‌भाव, प्रेम, भक्ति और एकता का पावन संदेश देती है।

यह यात्रा प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को बड़े धूमधाम के साथ पहण्डी विजय के साथ निकलती है। सबसे पहले सुदर्शनजी को पहण्डी विजय के साथ लाया जाता है। देवी सुभद्राजी को पहण्डी विजय के साथ लाया जाता है तथा उनके रथ को देवदलन पर विराजमान कराया जाता है। उसके बाद जगन्नाथजी के बड़े भाई बलभद्रजी को पहण्डी विजय के साथ लाकर उनके रथ, तालध्वज पर विराजमान कराया जाता है। अंत में, पहण्डी विजय

कराकर लाया जाता है संसार के स्वामी, जगत के नाथ श्री श्री जगन्नाथजी महाराज को और उनके रथ को नन्दिघोष पर विराजमान कराया जाता है।

उसके बाद जगन्नाथजीके प्रथम सेवक पुरी के नरेश, श्रीदिव्य सिंहदेवजी पालकी में बैठकर आते हैं और तीनों ही रथों पर छेरापहंरा करते हैं। चंदनमिश्रित जल झिड़कते हैं। तीनों ही रथों को उनके सारथी और घोड़ों के साथ जोड़ा जाता है और 'जय जगन्नाथ!' की हर्ष ध्वनि के साथ रथ यात्रा शुरू होती है। सबसे आगे जगन्नाथजी के बड़े भाई बलभद्रजी का रथ, तालध्वज चलता है। बलभद्रजी को रोहिणी और बसुदेव का पुत्र, रेवती के पति के साथ ही साथ एक योद्धा, गदाधारी, शांति, समृद्धि तथा अहिंसा के प्रतीक के रूप में माना जाता है।

बीच में देवी सुभद्राजी, जिन्हें ब्रह्मा, योगमाया, बलभद्रजी की पूरी बहन, कृष्णजी की आधी, नंद की बेटी, सात्यिकी की सबसे बड़ी बहन, अर्जुन की पत्नी और अभिमन्यु की माँ कहा जाता है, जो भक्ति के प्रतीक के रूप हैं, उनका रथ देवदलन रथ चलता है।

और अंत में, जगन्नाथजी का रथ नन्दिघोष रथ चलता है। जगन्नाथजी जिन्हें विष्णु का अवतार तथा जिन्हें कालिया, बड़े ठाकुर, जग्गा, पतितपावन, नीलमाधव, जगदीश, लोकेश्वर, पुरुषोत्तम, नीलाद्रिबिहारी और लोकबंधु कहा जाता है उनका रथ चलता है।

लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुण्डीचा मंदिर तक इन रथों को खींचकर लाया जाता है और दूसरे दिन देव विग्रहों को पहण्डी विजय करा कर गुण्डीचा मंदिर में लाया जाता है। वहां पर लगातार सात दिनों तक श्रीमंदिर की तरह ही पूरी रीति-नीति के साथ विग्रहों की पूजा की जाती है और उन्हें भोग आदि भी निवेदित किये जाते हैं।

इधर श्रीमंदिर में नाराज लक्ष्मीजी पांचवें दिन यानी हेरापंचमी के दिन गुण्डीचा आती हैं लेकिन गुण्डीचा मंदिर में सेवायत उन्हें जगन्नाथजी से मिलने नहीं देते हैं। क्रोधित होकर लक्ष्मीजी सामने खड़े जगन्नाथजी के रथ के कुछ हिस्सों को तोड़कर चली आती हैं।

सात दिनों के देव-विग्रह विश्राम के उपरांत बाहुड़ा यात्रा यानी वापसी यात्रा होती है। पहण्डी विजय के साथ एक बार फिर पुनः देव विग्रहों को उनके अपने-अपने रथ पर विराजमान कराया जाता है, छेरापहंरा होता है और भक्त और सेवायतगण रथों को खींचकर श्रीमंदिर के सिंहद्वार के सामने खड़ा करते हैं। महाप्रभु सहित सभी देव विग्रहों को स्वर्ण वेष में सजाया जाता है, जिसे देखने के लिए लाखों श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ती है और मंदिर में लक्ष्मीजी की अनुमति के उपरांत देव विग्रहों को रत्नवेदी पर पुनः विराजमान कराया जाता है।

वास्तव में रथ यात्रा महोत्सव अक्षय तृतीया से आरंभ होकर, रथ निर्माण, चंदन यात्रा, स्नान यात्रा, अनासरा, नव यौवन दर्शन तथा रथ यात्रा तक चलता है।

प्रतिवर्ष तीन नये रथ बनाये जाते हैं और श्रीमंदिर के सिंहद्वार के सामने सुसज्जित कर उत्तर दिशा में बड़दाण्ड पर खड़े किए जाते हैं। इन रथों को चलते-फिरते मंदिर भी कहते हैं। तीनों देव विग्रहों को पहण्डी विजय के साथ रथ पर लाया जाता है। जगन्नाथजी के प्रथम सेवक पुरी के नरेश गजपति श्री दिव्यसिंहदेव के द्वारा तीनों ही रथों पर छेरापहंरा किया जाता है और रथ यात्रा शुरू होती है।

भगवान जगन्नाथ साल में एक बार अपने ऐसे भक्तों से मिलने के लिए श्रीमंदिर के रत्नसिंहासन का त्याग करते हैं और रथयात्रा करते हैं, जिन भक्तों को मंदिर में प्रवेश पर सदा रोक लगी होती है। इनमें सालबेग जैसे भक्त का नाम आता है। चण्डालिका का नाम आता है।

रथयात्रा के क्रम में जगन्नाथजी अपनी मौसी मां के घर से अपना प्रिय भोजन पूड़ापीठा ग्रहण करते हैं।

गुण्डीचा मंदिर में दूसरे दिन पहुंचकर पहण्डी विजय के साथ सात दिनों तक सभी देव विग्रहों की पूजा-अर्चना की जाती है भोग आदि श्रीमंदिर की तरह ही निवेदित किया जाता है। सचमुच महाप्रभु अपने मानवी रूप का मानव के बीच प्रदर्शन करते हैं और ये सब देखकर ऐसा

लगता है कि सचमुच जगन्नाथजी विश्व मानवता के प्राण हैं।

ऐसी मान्यता है कि जिस वर्ष दो महीने का आषाढ़ यानी मलमास होता है, उसवर्ष महाप्रभु का नवकलेवर होता है अर्थात् देव विग्रहों के कलेवर का नव निर्माण किया जाता है। अब तक 1733, 1744, 1752, 1771, 1790, 1809, 1828, 1836, 1855, 1874, 1893, 1912, 1931, 1950, 1969, 1977 और 1996 में महाप्रभु का नवकलेवर हुआ है। यह कथन सत्य है कि जिस प्रकार मानव अपने पुराने वस्त्रों का त्याग कर नया वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार यहां पर मत्त्य बैकुण्ठ में तीनों देव विग्रहों की आत्मा पुराने कलेवर का त्यागकर नव कलेवर को धारण करती हैं।

प्रतिवर्ष नये रथ बनाये जाते हैं और पुराने रथ तोड़ दिये जाते हैं। सिर्फ पार्श्व देव-देवी वहीं रहते हैं। रथ-निर्माण का कार्य पुरी के नरेश के महल के सामने होता है जिसे रथशाला या रथखल्ला कहते हैं।

रथशाला– रथ के निर्माण का कार्य जहाँ पर सम्पन्न होता है उसे रथशाला या रथखला कहते हैं। यह रथशाला श्रीमंदिर प्रशासन भवन के ठीक सामने पुरी के नरेश के महल के पास है। ऐसी मान्यता है कि जिस प्रकार मानव शरीर पाँच तत्वों के मेल से बना है, ठीक उसी प्रकार रथ-निर्माण में भी पाँच प्रकार के साधन जैसे- काठ, रंग, वस्त्र, कांटी एवं धातु का प्रयोग किया जाता है।

रथ-निर्माण– रथ निर्माण की अत्यंत गौरवशाली परम्परा रही है। इस कार्य को अक्षय तृतीया से शुरू किया जाता है और कुल 60 दिनों में पूरा किया जाता है। रथ निर्माण का कार्य वंशानुक्रम से सुनिश्चित बढ़ईगण ही करते हैं। निर्माण का कार्य पूर्णतः शास्त्र-सम्मत विधि से होता है। विशेषज्ञों का यह मानना है कि तीनों ही रथ नन्दिघोष, तालध्वज और देवदलन पूरी तरह से वैज्ञानिक आधार पर निर्मित होते हैं। हर साल नये रथ बनाये जाते हैं और पुराने रथ तोड़ दिये जाते हैं। प्रत्येक रथ का वजन लगभग 65 टन होता है। रथ निर्माण साल, असना, अर्जुन और फासी आदि किस्म की मजबूत लकड़ियों का इस्तेमाल होता है। रथ

निर्माण कार्य में कुल 205 प्रकार के अलग-अलग सेवायत जैसे बढ़ई, चित्रकार आदि सहयोग देते हैं।

नन्दिघोष रथ– यह रथ महाप्रभु जगन्नाथ का रथ है। इसकी ऊँचाई 45 फीट है। इसमें 16 चक्के लगे होते हैं। इसके निर्माण में 832 काष्ठ खण्डों का इस्तेमाल किया जाता है। रथ पर लाल-पीला परिधान होता है। कहा जाता है कि पीला रंग ज्ञान, विद्या और विवेक का प्रतीक होता है तथा लाल रंग धार्मिकता, धन, समृद्धि और शुभ-लाभ का प्रतीक होता है। इस पर लगे पताके का नाम त्रैलोक्यमोहिनी है। इसके सारथि हैं– दारुक तथा रक्षक हैं –गरुण। इसमें चार घोड़े –शंख, बलाहक, सुस्वेत और हरिदाश्व हैं। घोड़ों का रंग सफेद होता है। ऐसा बताया जाता है कि इस रथ को इन्द्र ने प्रदान किया था। इसके रस्से का नाम शंखचूड़ है। इसे पार्श्व देवों के नाम– वराह, गोवर्धन, कृष्ण, गोपीकृष्ण, नृसिंह, राम, नारायण, त्रिविक्रम, हनुमान और रुद्र हैं।

देवदलन रथ– यह रथ देवी सुभद्रा का है। देवदलन को दर्पदलन या पद्मध्वज भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई 43 फीट होती है। इसमें 593 काष्ठ खण्डों का प्रयोग किया जाता है। इस पर लगे परिधान का रंग लाल-काला होता है। लाल रंग धार्मिकता, धन, समृद्धि और शुभ-लाभ का प्रतीक होता है तथा काला रंग शक्ति और पौरुष का प्रतीक होता है। इसमें 12 चक्के होते हैं। इसके सारथि का नाम अर्जुन तथा रक्षक का नाम जयदुर्गा है। इस पर लगे पताके का नाम नदम्बिका है। इसके चार घोड़ों के नाम– रोचिका, मोचिका, जीत और अपराजिता है। घोड़ों का रंग भूरा होता है। इसके रस्से का नाम स्वर्णचूड़ है। इसकी नौ पार्श्व देवियाँ हैं– चंडी, चमुंडी, उग्रतारा, शुलीदुर्गा, वराही, श्यामकाली, मंगला और विमला।

तालध्वज रथ– यह रथ महाप्रभु जगन्नाथ के बड़े भाई बलभद्र का है। इसे बहलध्वज भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई 44 फीट है। इसमें 14 चक्के लगे होते हैं। इसमें 763 काष्ठ खण्डों का प्रयोग किया जाता है। इस रथ के सारथि का नाम मातली तथा रक्षक का नाम– बासुदेव है। इस पर लगे

पताके का नाम उन्नानी है। इस रथ के परिधान का रंग लाल-हरा होता है। लाल रंग धार्मिकता, धन, समृद्धि और शुभ-लाभ का प्रतीक होता है तथा हरा रंग खुशहाली एवं नव स्फूर्ति का प्रतीक होता है। इसके घोड़ों का नाम– तीब्र, घोर, दीर्घाश्रम और स्वर्णनाभ है। घोड़ों का रंग काला होता है। रस्से का नाम बासुकी है। पार्श्व देवों के राम-गणेश, कार्तिकेय, सर्वमंगला, प्रलंबरी, हतयुधा, मृत्युंजय, नतंभरा, मुक्तेश्वर और शेषादेव हैं।

रथ को खींचने के लिए नारियल के मोटे-मोटे रस्से व्यवहार में लाये जाते हैं, जिन्हें रथ की धूरी से बांधा जाता है। हर दो चक्कों के बीच धूरी होती है। प्रत्येक चक्के को धूरी से बांधने के लिए छह इंच व्यास का छेद किया जाता है और अत्यंत निपुणता और कारीगर कौशल के साथ रथ का निर्माण किया जाता है। श्रद्धालु भक्तगण जब जोश में रथ को खींचते हैं तो गति को संतुलित रखने के लिए विशालकाय काष्ठ खण्ड को ब्रेक के रूप में प्रयोग में लाया जाता है जो रथ के अगले भाग में रस्सियों के सहारे लटका होता है। अनेक सेवायत संचालक रथ के अगले दण्ड पर इन रस्सियों को पकड़े बैठे होते हैं।

रथों को खींचने के लिए भी दो प्रकार की रस्सी लगी होती है एक, सीधी और दूसरी घुमावदार। प्रत्येक रथ में चार-चार रस्सियाँ लगी होती हैं। इनको विभिन्न चक्कों की धूरी से खास तरीके से बांधा जाता है।

रथ के बनाने का काम पुरी के राजा के महल के सामने होता है जिसे रथखल्ला कहते हैं। रथ निर्माण के बाद आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को जगन्नाथ मंदिर के सिंहद्वार के सामने लाया जाता है। रथों को मंदिर के सामने उत्तर दिशा की ओर मुँह करके खड़े किये जाते हैं। रथों को इतनी बारीकी के साथ खड़ा किया जाता है कि बड़दाण्ड पर उन्हें खींचते समय वे बीच में ही चलें। रथ संचालन के लिए झंडियों को हिला-हिलाकर आवश्यक निर्देश दिया जाता है कि रथ को किस ओर सही तरीके से खींचा जाय।

रथयात्रा से जुड़ी अन्य यात्राओं में चंदनयात्रा का अपना विशेष महत्त्व है।

चन्दन यात्रा– अक्षय तृतीया से चन्दन यात्रा शुरू होती है। यह यात्रा 21 दिनों तक चलती है। इस यात्रा हेतु प्रतिदिन जगन्नाथजी की विजय प्रतिमा मदनमोहन, रामकृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती, बलराम और पंच पाण्डव, लोकनाथ, मार्कण्डेय, नीलकण्ठ, कपालमोचन और जम्बेश्वर को प्रतिदिन अपराह्न में पालकी/विमान में बिठाकर परंपरागत बनाटी खेल, तलवार चालन, पाईक नृत्य के साथ भजन–कीर्तन के मध्य नरेंद्र तालाब लाया जाता है और उन्हें नाव में बिठाकर एक छोर से दूसरे छोर तक नौका विहार कराया जाता है। बाद में देव–देवियों को तालाब के बीच अवस्थित चन्दन घर में ले जाकर वहाँ सुवासित जल में कुछ समय तक रखा जाता है। यह औपचारिकता दिन में एक बार तथा रात में 21 बार पूरी की जाती है।

स्नान यात्रा– स्नान यात्रा को देव स्नान यात्रा भी कहते हैं। ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन श्रीमंदिर में महा स्नान उत्सव मनाया जाता है।

उस दिन रत्नवेदी से सुदर्शनजी, बलभद्रजी, सुभद्राजी और जगन्नाथजी को पहण्डी विजय के साथ स्नान मण्डप पर लाया जाता है और अन्य विधि–विधानों के बाद जगन्नाथजी के प्रथम सेवक पुरी के नरेश आकर छेरापहंरा करते हैं और उसके बाद श्रीमंदिर के उत्तर महाद्वार के पास के शीतला माता के स्वर्ण कुएं से सुदर्शन के लिए 28 कलश, बलभद्रजी के लिए 33 कलश, सुभद्राजी के लिए 28 कलश तथा जगन्नाथजी के लिए 35 कलश जल लाया जाता है और फिर जल से आरंभ होता है विग्रहों का महास्नान। उसके बाद महाप्रभु को गजवेष के रूप में सजाया जाता है। कहते हैं कि जगन्नाथजी के एक भक्त की इच्छा थी कि वह उन्हें स्नानपूर्णिमा के दिन गज वेष में ही देखें। श्रीमंदिर में गजवेष के दर्शन हेतु हर वर्ष लगभग तीन लाख श्रद्धालु भक्त पुरी आते हैं। गोपालतीर्थ मठ तथा राघवदास मठ से टाहिया/मुकुट आदि लाया जाता है। स्नान के उपरांत विग्रहों को श्रीमंदिर के अणसरगृह/बीमार कक्ष में ले जाया जाता है जहां विग्रहों को 15 दिनों तक रखा गया 'एकांत' में रखा जाता है। मंदिर का दरवाजा बंद कर दिया जाता है। अणसर पिंडी पर

उन्हें लगातार हरबल औषधि का भोग लगाया जाता है और जिसका नियमित सेवन कर देव विग्रह स्वस्थ हो जाता है।

अलारनाथ मंदिर– पुरी से लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर ब्रह्मगिरि में भगवान अलारनाथ का मंदिर है। यह प्रकृति के खुले वातावरण में शान्त एवं एकांत में अवस्थित है, जहाँ जगन्नाथ भक्तगण उस समय जाया करते हैं जब भगवान जगन्नाथ बीमार होते हैं, जब वे अणसरगृह में होते हैं और श्रीमंदिर में उनके दर्शन पर पाबंदी लगी होती है। ऐसा कहा जाता है कि वहाँ अलारनाथजी के दर्शन हेतु श्री चैतन्य प्रभु भी आये थे। यह एक वैष्णव मंदिर है। यहाँ पर मीठी खीर पकाई जाती है और महाप्रभु को निवेदित की जाती है।

भगवान जगन्नाथ को विष्णु का अवतार माना जाता है और पौराणिक कथा के आधार पर अवंती के नरेश विष्णु भक्त इन्द्रद्युम्न को सपने में एक देव वाणी सुनाई दी कि वे भारत के पूर्वी भाग में अपने दूत को भेजें और पता लगाएं कि कहाँ पर और किस रूप में विष्णुजी के अवतार जगन्नाथजी की पूजा नीलमाधव के रूप में होती है। नरेश ने विद्यापति नामक एक ब्राह्मण को इस काम में लगाया। विद्यापति नीलांचल धाम आए। यहाँ पर उन्होंने देखा कि एक आदिवासी नील पर्वत पर कहीं जाता है और पूजा करके वापस आता है। विद्यापति एक दिन उस आदिवासी का पीछा करते हुए उसके घर पहुँच गए। लेकिन डर के मारे अंदर नहीं गये। रात में वहीं कहीं ठहर गये। दूसरे दिन जब वह आदिवासी नीलमाधव पूजन हेतु चला गया तो विद्यापति को वहाँ एक सुंदर आदिवासी युवती दिखाई दी। वे उसके पास गये और सीधे उससे विवाह का प्रस्ताव रख दिया। उस लड़की का नाम ललिता था। उसके पिता का नाम विश्ववसु था और वह नीलमाधव का भक्त था। ललिता ने विद्यापति से कहा कि जब उसके पिताजी आएंगे तो यह बात वह उन्हें बताएगी। विश्ववसु के वापस लौटने पर विद्यापति ने ललिता से अपने विवाह का प्रस्ताव विश्ववसु के सामने रखा। विश्ववसु ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया

और अब विद्यापति और ललिता दोनों पति-पत्नी के रूप में रहने लगे।

एक दिन विद्यापति ने ललिता से नीलमाधव के बारे में पूछा और उससे कहा कि अगर वह अपने पिताजी से नहीं पूछेगी तो वे उसे छोड़कर चले जाएंगे। डरकर ललिता ने विश्ववसु से नीलमाधव के पूजन-स्थल के बारे पूछा और अपनी बेटी के हित में विश्ववसु ने बताया कि वह विद्यापति को उनकी आंखों पर पट्टी बाँधकर ले जाएगा और ले आएगा जिससे कि वे उस रास्ते को न जान सकें। ललिता उनसे भी चालाक निकली और जिस गमछे से उनकी आँख बाँधी गई उस गमछे के दोनों छोरों पर सरसों बाँध दी, जो जाते समय गिरते गए। नील पर्वत पर एक पेड़ के नीचे नीलमाधव की पत्थर की मूर्ति थी। जैसे उनकी आँखों से गमछा हटाया गया। उन्होंने देखा कि एक कौआ उस पेड़ से नीचे गिरा और स्वर्ग चला गया। विद्यापति को लगा कि वे भी अपनी जीवन-लीला वहीं पर समाप्त कर दें तभी उनको एक देववाणी सुनाई दी कि जिस काम के लिए वे आए हैं उसे वे पूरा करें। विद्यापति लौटकर अवंती आए और नीलमाधव के बारे में अपने नरेश को बताया।

इन्द्रद्युम्न अब पुरी आये। वहाँ से नीलमाधव को पूजनस्थली पर ले गये लेकिन वहाँ पर उन्हें कुछ भी नहीं मिला। रात में उन्हें एक देव वाणी सुनाई दी कि समुद्र के तट पर जाओ और वहाँ जल पर तैरते हुए काष्ठ खण्ड को लाओ और उससे देव प्रतिमा का निर्माण करो। दूसरे दिन वे अपने दलबल के साथ पुरी के समुद्रतट पर पहुँचे और वहाँ पर जल पर तैरते हुए दारु लट्ठ को अपने आदमियों से उठवाना चाहा लेकिन वह लट्ठ टस से मस न हुआ। फिर रात में उन्हें एक देववाणी सुनाई दी कि वे स्वयं अपना अभिमान त्यागकर उस लट्ठ को लाएँ और देव मूर्ति का निर्माण करें। दूसरे दिन उस दारु लट्ठ को लाया गया और अनेक बढ़ई बुलाए गए लेकिन जो भी उस पर अपनी कुल्हाड़ी चलाता था वह कुल्हाड़ी ही टूट जाती थी।

एक दिन विश्वकर्मा स्वयं एक बढ़ई के रूप में आए और उन्होंने देव मूर्ति के निर्माण हेतु एक शर्त रखी कि वे 21 दिनों के भीतर किसी बंद

कमरे में देव मूर्ति का निर्माण करेंगे। 15वें दिन रानी गुण्डीचा को लगा कि वह बढ़ई बिना अन्न-जल के मर जाएगा। तब उस दरवाजे को तोड़ दिया गया। वहाँ उस घर में वह बढ़ई नहीं था, केवल थे तो तीन अर्द्ध-निर्मित देव विग्रह। कहते हैं कि पुरी के श्रीमंदिर में वे ही तीन विग्रह आज भी हैं और उनकी पूजा-अर्चना विधि-विधान के साथ की जाती है। यह भी मान्यता है कि जगन्नाथजी अपनी जन्मस्थली गुण्डीचा, साल में एक बार अवश्य आते हैं। यह भी कहा जाता है कि काफी दिनों तक बीमार रहने के बाद अच्छे स्वास्थ्य के लिए भी वे रथ यात्रा करते हैं। साथ ही साथ पतितों को तारने के लिए, दलितों के उद्धार के लिए तथा जाति-पांति को मिटाने के लिए महाप्रभु जगन्नाथ अपनी रथ यात्रा करते हैं।

कुला मिलाकर यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि पुरी में प्रतिवर्ष निकलने वाली महाप्रभु जगन्नाथ की रथ यात्रा महाप्रभु की भक्तवत्सलता तथा त्याग भावना का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह यात्रा अपने आप में सर्वधर्म समन्वय, अनेकता में एकता, जाति, भाषा, प्रांत के मोह से अलग विश्वबंधुत्व, शांति, सद्भाव, समृद्धि की संदेश वाहिका है। यह रथ यात्रा धर्म एवं दर्शन की त्रिवेणी है।

महाप्रसाद

जगन्नाथजी को जब हम दारुब्रह्म कह कर आराधना करते हैं तो उन परम ब्रह्म को अर्पित वस्तु ही महाप्रसाद बनती है। ये जगन्नाथ न वैदिक हैं और न तांत्रिक, सच कहा जाय तो इस प्रकार के भेद-विचार से वे ऊर्ध्व हैं, इसी कारण जगन्नाथजी का महाप्रसाद भी किसी तरह के संकीर्ण विचार से हट कर है। प्राणिमात्र को यह महाप्रसाद पाने का अधिकार है। बस शुद्ध मन से, श्रद्धा से इसे ग्रहण करने की कामना करनी होगी। केवल श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण मन ही महाप्रसाद ग्रहण करने का अधिकारी है। इसके बिना उस व्यक्ति को कभी महाप्रसाद की ओर मुँह भी नहीं करना चाहिए। यह सामान्य निर्मित भोज्य पदार्थ नहीं जो इतनी सहजता से लिया और मुँह में डाल लिया। महाप्रसाद की महिमा अवर्णनीय है। यह जीवन का सर्वश्रेष्ठ मूल्य है। जीवन का चरम लक्ष्य है। महाप्रसाद पाने के बाद जीवन में और कुछ प्राप्त करने को रह नहीं जाता। सब कुछ का चरम है महाप्रसाद! वैसे भोज्यप्रसाद का अर्पण तो एक अंश है। इसके अलावा भी हम हृदय से जो कुछ महाप्रभु को निवेदन करते हैं, उसे भी वे अकुंठ चित्त ग्रहण करते हैं। वह चाहे दासिया बावरी का नारियल और धनकुबेर का अर्पित गजमुक्ता के चूने से बना पान। जगन्नाथजी के आगे सब एक समान है।

दूसरे दृष्टिकोण से कह सकते हैं—जगन्नाथ को 'बड़ भोगी' कहते हैं, परंतु वे कुछ भी ग्रहण नहीं करते। वे तो सिर्फ 'भाव' के भूखे हैं। अत:

प्रत्यक्षत: जगन्नाथजी को कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता। जहाँ हम देखते हैं, वहाँ वे नहीं हैं। वे तो वहाँ छायारूप में विराजमान हैं। उसके उलटे वहाँ से हट कर समग्र सृष्टि के कण-कण में विराजित हैं। इसी भाव के कारण पूजापंडा जब नैवेद्य लेकर बैठता है तो रत्नवेदी पर स्थापित विग्रहों की षोडषोपचार पूजा करने का साहस भी नहीं कर पाते। तीन दर्पण स्थापित कर उनमें दारु ब्रह्म का प्रतिबिम्ब देखते हैं। उसका दर्शन कर फिर पूजन-अर्चन और अर्पण आदि सभी विधि-विधान करते हैं। प्रतिदिन अर्पित होने वाला नैवेद्य भी इसी प्रतिबिम्ब को ही अर्पित करने की परंपरा है। संसार में प्रतिबिम्ब भी कहीं कुछ ग्रहण करता है? परंतु यहाँ ग्रहण करते हैं, तभी तो सब अर्पित पदार्थ महाप्रसाद बन कर बाहर आकर वितरित होता है। आज तक सदियों से यहाँ धारा चली आई है। किसी ने इस पर प्रश्न नहीं उठाया। अगर शंका की है तो अविलम्ब अपनी अज्ञता जान पश्चात्ताप किया है। सत्य जानने के बाद आदमी स्वत: चरणों में झुक जाता है। महाप्रसाद के संबंध में यही होता रहा है।

कई बार लोगों में शंका होती है- यह कैसा महाप्रसाद है! यहाँ न जूठन का विचार है, न जात-पांत का भेद। एक हंडी से सब लेकर मुँह में डाल लेते है! उसी प्रकार यहाँ पर कोई किसी को छोटा-बड़ा नहीं कहता। सब समभाव से मग्न होकर सेवन करते हैं। इतना ही नहीं, मांग-मांग कर महाप्रसाद लेने में भी इन्हें कोई संकोच नहीं होता।

ऐसा क्या है इस महाप्रसाद में, जो आदमी को अपना पद-जाति, कुल, गोत्र, मर्यादा सब भुला कर सबके साथ समभाव कर देता है। इसे पाते ही आनंद में आदमी अपने अस्तित्व को भी भुला बैठता है। वैसे भी महाप्रसाद के बारे में कहा जाता है—''प्राप्त मात्रेण भुंजीत'' वर्णन आता है :

भक्ष्याभक्ष्य विचारेऽत्र त्याज्यो ग्राह्यो न विद्यते'
न काल शुद्धि नियमो न वा स्थान निरुपणम्।
अभक्तो वाणि भक्तो वा स्नातोवाऽस्नात एव वा
साधयेत् परमं मत्र स्वेच्छाचारेण साधक:।

(भक्ष्या अभक्ष का विचार नहीं, त्याग ग्रहण की स्थिति नहीं, काल शुद्धि-अशुद्धि का विचार नहीं, उसी प्रकार भक्त-अभक्त का भेद नहीं, इन परमब्रह्म के साधन से मनुष्य परमब्रह्म साधन करता है)

जगन्नाथजी के महाप्रसाद को लेकर यह दृष्टिकोण सदियों से अपरिवर्तित है। भले ही बीच में कुछ ब्राह्मणों ने छुआछूत का प्रचलन कर भेदबुद्धि फैला दी। बीच में जैन-बौद्धों ने उसका उत्पाटन किया और सवत्मिवाद या सर्वमानव समता को पुन: स्थापित किया। परंतु जैसा बौद्धों में, वेदों में कोई मान्यता नहीं है जबकि जगन्नाथ के संबध में वेद-पुराण मुख्य हैं। यहाँ वेद विरोधी मनोभाव को कोई स्वीकृति नहीं है। अत: महाप्रसाद की परंपरा की तलाश में अवैदिक पंथों में भटकना व्यर्थ है। हाँ, इस परंपरा का साम्य अन्यत्र अगर उपलब्ध है तो यह इस के महान आदर्श का प्रतिपादन है, उनके प्रभाव का परिचायक नहीं मान सकते। जगन्नाथ मंदिर में मूलत: मानव मात्र को समान महत्व देकर भगवान के आगे उस जाति-पांति का भेद-भाव नहीं किया जाता। आगे चल कर श्रीमद् रामान्द स्वामी ने भी यही बात स्वीकार कर कहा।

''जात-पांत पूछे नहीं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥''

अर्थात् भगवान के भक्तों में जाति-पांति जैसा भेद-भाव नहीं होता। इसी प्रकार भगवान के महाप्रसाद को ग्रहण करने का मन जो बना लेता है वह ऐसे विभेदक स्तर से बहुत ऊपर उठ जाता है। जगन्नाथजी के पास ऐसी समभावना संसार के लिए एक अनूठा आदर्श है। यही कारण है कि भगवान का महाप्रसाद लेते समय यथार्थ में हर मानव को दिव्य अनुभूति होती है।

कवि ने सदियों पहले मुग्ध भाव से कहा था–

''उड़िया मांगे खीर-खिचड़ी, बंगाली मांगे भात।
भक्त मांगे दर्शन तेरो और महाप्रसाद॥''

यहाँ भक्त का सबसे प्रिय महाप्रसाद होने की बात कबीर की वाणी में

सुनाई दे रही है। इतना ही नहीं मीरा भी उसी भक्तिधारा में बह कर गा उठती है–

उखड़ा और दूध-भोग, प्रभु जी ने खाई।
महाप्रसाद भोग खात, आरती सजाई।

भगवान के दर्शन के बाद उनके महाप्रसाद सेवन को ही सब भक्त, संत, महात्मा महत्व देते हैं।

महाप्रसाद शब्द को कुछ विद्वान 'माप्रसाद' का संस्कृत रूप मानते हैं। जगन्नाथ को अर्पित प्रसाद माँ विमला के पास जाकर 'महाप्रसाद' बनता है। परंतु इस व्याख्या से बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाती। कुछ हद तक यह बात स्वीकार्य है कि इस रंधन प्रक्रिया की अधिष्ठात्री लक्ष्मी देवी हैं। उसे फिर विष्णु-साक्षात नारायण ग्रहण करते हैं। अत: यह 'महाप्रसाद' कहलाता है। इसी दृष्टि में यह बात भी मेल खाती है कि दारु मूर्ति में ब्रह्म अवस्थापित हैं। इसे कुछ लोग जीवंत शालिग्राम अथवा ब्रह्मशीला कहते हैं। अत: इनको अर्पित भोग को 'महाप्रसाद' आख्या देना समीचीन लगता है।

तांत्रिक विचार के समर्थकों का कहना है– महाप्रसाद की रंधन प्रक्रिया में वैष्णवाग्नि का प्रयोग होता है। यहाँ संस्कार कार्य नवचक्र पर होता है। जहाँ अन्न पकता है, वहाँ नौ हांडी बैठाते हैं। एक चूल्हे के छ: मुख होते हैं। यानि यह कार्य तांत्रिक पद्धति से संपन्न होता है। वे लोग जगन्नाथ को महाभैरव और विमला देवी को महाभैरवी के रूप में मानते हैं। इस प्रकार महाभैरव का प्रसाद वहाँ जाकर ही महाप्रसाद बनता है। परंतु जगन्नाथ मंदिर में तांत्रिकों का इतना अधिक प्रभाव होने की बात कम ही लोगों के गले उतरती है। आज वैष्णव भक्तिधारा बात-बात में अपने अस्तित्व को प्रमाणित करती है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह बात स्पष्ट है कि संस्कार के बाद उस अन्न का अन्नत्व लोप हो जाता है। उसे मंत्र या तंत्र किस प्रकार हो, ब्रह्मत्व में रूपांतरित कर देते हैं। निवेदन से पूर्व जो वस्तु 'नवैद्य' रूप मे है, अर्पण के बाद वही अत्यंत पवित्र तथा महान विभूति संपन्न ''महाप्रसाद'' में रूपांतरित हो जाती है। इसे प्राप्त

करने हेतु विप्र/देवता सभी लालायित रहते हैं।

इस महाप्रसाद को ग्रहण कर आदमी अपना जीवन धन्य समझता है। अंतितकाल में इसका एक कण (निर्माल्य) लेकर परलोक सुधार लेता है। इस जीवन में यह महाप्रसाद अनेक प्रकार से व्यवहृत होता है। साक्षी के रूप में रखते हैं– दो पक्ष जब सगाई के लिए आमने-सामने बैठते हैं– यह निर्माल्य (सूखे महाप्रसाद के कण) एक-दूसरे को प्रदान कर इसकी साक्षी में वचन देते हैं। यह अटूट रहता है। कोई भी इससे मुकर नहीं सकता। यह पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों के लिए शपथ स्वरूप होता है। इसी प्रकार मैत्री बंधन को 'महाप्रसाद' कह कर पुकारते हैं। इसमें मैत्री करते समय महाप्रसाद ही आदान-प्रदान करते हैं। यह महाप्रसाद सच्चा साक्षी होता है– यह मित्रता निष्कपट होती है। इसमें नि:स्वार्थ भाव भरा रहता है। महाप्रसाद सेवन हर प्रकार का अशौच दूर करता है। मृतक सूतक के बाद जगन्नाथजी का महाप्रसाद लाकर भोग करवाना सर्वाधिक पवित्र कार्य माना जाता है। इतना ही नहीं, विवाह, जनेऊ आदि मांगलिक कार्यों के अवसर पर भी महाप्रसाद सेवन की परंपरा है। कुछ लोग श्रीक्षेत्र निवास कर कल्पवास करते हैं। ऐसे समय वे महाप्रसाद के अतिरिक्त कुछ भक्षण नहीं करते। महिलायें यह महाप्रसाद एक-दूसरे के मुँह में देकर सखी बनती हैं, उनका नेह बंधन बहुत घनिष्ठ होता है। यही कारण है कि श्रीमंदिर में किसी से महाप्रसाद स्वीकार करने का अर्थ होता है उसके साथ बंधुत्व स्थापित कर रहे हैं। उस बंधुता के साक्षी स्वयं यह महाप्रसाद होता है। इसी प्रकार पहले गाँवों में कोई न्याय-पंचायत होती अथवा किसी को शपथ लेकर कुछ कहना होता तो वह अपने हाथ में पहले यह महाप्रसाद लेकर कहता। फिर उसमें संदेह करने की गुंजाइश नहीं रह जाती। मनुष्य का विश्वास और उसकी आस्था के जो जगन्नाथ महामेरु हैं। ऐसी अडिगता महाप्रसाद के स्पर्श मात्र से रोम-रोम में भर जाती है। शुचिता, सत्यता और सशक्तता तीनों का समन्वय जगन्नाथ के महाप्रसाद में समन्वित रहता है।

महायोगी और महाभोगी

भगवान श्रीजगन्नाथजी स्वयं कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं। इसीलिए उन्हें महायोगी कहा जाता है। परंतु परंपरा में उनको छप्पन पौटी भोग प्रतिदिन लगाया जाता है। छत्तीस व्यंजन, छप्पन भोग उन्हें अर्पित करते हैं। अत: उन्हें महाभोगी कहा जाता है। गजपति महाराज जिनके प्रथम सेवक हैं, उनकी महिमा का कोई क्या बखान करेगा।

इनकी अहर्निश सेवा चलती रहती है। फिर भी प्रात: पाँच बजे द्वार खुलते हैं और मध्यरात्रि में बड़सिंहार वेश के बाद पलंग लगाकर शयन करते हैं। इसी बीच धूप (भोग) और 'भअंड' होते हैं। यद्यपि इनकी निर्धारित समय तालिका है,परंतु भक्त समागम देख उनमें घट-बढ़ संभव है।

गोपाल बल्लभ भोग– यह प्रात: होने वाला बाल भोग है। परंपरा तो नौ बजे यह भोग लगाने की थी। परंतु अब मध्यान्ह हो जाता है। इसमें क्षीर, गजा, फल आदि पंद्रह प्रकार की सामग्री अर्पित होती है।

सकाल भोग– इसमें षोड्श उपचारपूर्वक पूजा की जाती है। इसमें अन्नभोग लगता है। साथ पिष्टक आदि भी अर्पित किये जाते हैं। यह ढाई बजे के आसपास अर्पित होता है। इसे राजभोग भी कहा जाता है। सिंहासन के नीचे मुरुज (अल्पना) बनाकर प्रसाद को साथ लाकर उसकी सीमा के अंदर रखते हैं। तभी यह महाप्रसाद बन जाता है।

भोगमंडप भोग– इनमें अन्न भोग होते हैं। पहले ग्यारह बजे पूर्वाह्न में अर्पित हुआ करता था। परंतु अब तो तीन बजे से पहले संभव नहीं है। इसे पंचोपचार पूर्वक संपन्न करते हैं। इसे संक्षेप में 'भअंड' कहते हैं। यात्रियों की संभाव्यता के अनुरूप मात्रा कम अधिक होती रहती है। मुख्यत: अन्न (चावल), खिचड़ी, दाल, बेसर, महुर, खटा, साग, कानिका, कुछ पिष्टक अर्पित करते हैं।

मध्यान्ह धूप– पूर्व परंपरा में मध्याह्न अर्थात् साढ़े ग्यारह बजे अर्पित होता है। परंतु अब यह भोग चार बजे के बाद ही संपन्न होता है। इसमें

अन्न, व्यंजन, पिष्टक, मिष्टान आदि विविध द्रव्य अर्पित किये जाते हैं। इस भोग के समय षोड्श उपचार एवं आरती की जाती है।

संध्या धूप– इसे भाग में करीब साढ़े छः बज जाते हैं। इसमें तेरह से सोलह प्रकार की मिठाई अर्पित की जाती है। इस समय 'जयमंगल' आरती होती है। 'जयमंगल' चांदी की आरती में संपन्न होती है। मिठाई के अतिरिक्त नमकीन खुरमा, उड़द के पिठा, सुवासित पखाल आदि का भी भोग लगा करता है।

बड़सिंहार धूप– इसमें पंचोपचार पूर्वक भोग लगाया जाता है। इस वक्त आरती की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें क्षीर, पिठऊ, कांजी आदि का भोग लगाते हैं। इसमें मुरुज बना कर वहाँ भोग रखने की विधि नहीं है। श्रीजगन्नाथ के आगे दो और बलभद्र तथा सुभद्रा के आगे एक-एक डाब (कच्चा नारियल) अर्पित किया जाता है। साथ में एक-एक पान भी अर्पित करते हैं। यह विधि महाप्रभु के शयन पूर्व संपन्न होती है।

इस नित्य नैमित्तिक विधि-विधान के अतिरिक्त विभिन्न महत्व के अवसर पर भिन्न प्रकार के भोग अर्पित किये जाते हैं।

अणसर (अनवसर) यानि स्नानपूर्णिमा से लेकर आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा तक जगन्नाथजी के लिए अन्न नहीं पकाया जाता। अतः विकल्प रूप में उन दिनों धोया मूंग और पन्ना अर्पित करते हैं। इस अवधि में दसमूल का नियमित भोग अर्पित करते हैं। मान्यता यह है कि महाप्रभु स्नान के बाद ज्वर ग्रस्त रहते हैं। अतः सामान्य प्रचलित अन्न भक्षण और उसका भोग नहीं लगाते। धनु संक्रांति से मकर संक्रांति तक बड़ी तड़के प्रातः भोग अर्पित किया जाता है। इसमें विलंब कभी नहीं करते। मूली, दही का बना रायता विशेष रूप से बनाकर अर्पित किया जाता है। इसके अलावा धनु संक्रांति वाले दिन धनु मुँआ (लाजा के बने लड्डू और धनाकृत मिठाई) अर्पित करने की परंपरा है। इसी प्रकार मकर संक्रांति के लिए मकर चावल (दूध, शक्कर, चावल, अदरख, कालीमिर्च आदि) निर्मित कर भोग लगाते हैं।

पूरे वर्ष भर में विभिन्न तिथियों पर होने वाले वेशों के अवसर पर विशेष 'खीर' प्रस्तुत कर भोग अर्पित करते हैं। इसे साधारणतः 'वेश खिरी' कहा जाता है। इसकी प्रस्तुति में दूध, साकर, खोया, चावल या सूजी मिलाकर निर्माण किया जाता है।

वैसे तो आज भी 'छप्पनभोग' कहकर जगन्नाथजी के भोगों की गिनती करते हैं। परंतु सदियों की परंपरा में अनेक वस्तुओं की प्रस्तुति छूट गई है। इसी प्रकार कुछ नई सामग्री को निर्माण कर भोग में शामिल किया जाता है। आज गिनने बैठें तो यह संख्या सौ के आस-पास हो जाती है। इनके नाम इतने रुढ़ हो गये हैं कि पुरी की भाषा से अपरिचित व्यक्ति घबरा जाता है। जैसे "मेंढामुंडिया, काकतुआझिली, हंसकेली, त्रिपुरी, चड़ेइलदा, जेनाणि," ये द्रव्य अत्यंत आकर्षक, मनमोहक और दिव्य स्वादयुक्त होते हैं। इस नामावली के पीछे सदियों की परंपरा, अर्पण विधि अवसर, व्यक्ति, ऋतु, आदि अनेक कारण जुड़े हैं। ये सब नाम किसी न किसी महत्व के सूचक हैं। विशेष आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। सोजा सामग्री, निर्माण, अर्पण, वितरण तथा भोग सामग्री की सारी व्यवस्था पूरी तरह वैज्ञानिक आधार पर निर्मित है। स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन, जैसी बातों की कहीं अपेक्षा नहीं की जाती। वरन भौतिक दृष्टि से देखें तो जगन्नाथजी के महाप्रसाद जैसी वस्तु पृथ्वी पर दुर्लभ है। यह असीम आनंद प्रदान करती है। आध्यात्मिक रूप में विचार करें तो एक कण मोक्ष प्रदान करता है और भरपेट अन्न महाप्रसाद असीम आनंद-उल्लास प्रदान करता है।

महाप्रसाद की पूरी भोग सामग्री सात्विक होती है। इसमें किसी तामसिक वस्तु का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी आलू, टमाटर, भिंडी, गोभी, सहजन, छछंदर, करेला, लौकी, बीन, प्याज, लहसुन आदि का प्रयोग पूर्णतः निषिद्ध है। हालांकि हींग, अदरख, हरी मिर्च आदि कुछ वस्तुओं के प्रयोग के कारण इन वर्जित वस्तुओं का अभाव कभी नहीं खटकता। हरी पत्तियों में सिर्फ कोशला साग या मूली की पत्तियों का साग

प्रयोग होता है। उषना चावल, लाल सूखी मिर्च और तेल का प्रयोग भी रसोईघर में वर्जित है।

इस सारी भोग की प्रक्रिया से संबद्ध हर सेवक के लिए कुछ नियमों का पालन अनिवार्य है। व्यवहृत हंडियों, कुड़वा आदि का पुनः प्रयोग कभी नहीं होता। एक बार मिट्टी का पात्र चूल्हे पर चढ़ाने के बाद दुबारा उपयोग नहीं कर सकते। प्रयोग में लेने वाले बर्तन अच्छी तरह से पके (लाल) होने चाहिये। सब को पूरी तरह शुचिता का पालन करना होता है। न्यूनतम वस्त्र धारण कर पूरी निष्ठा और आस्था के साथ रसोई में प्रवेश करना होता है। प्रस्तुति कार्य (तरकारी, नारियल काटना, चावल-दाल प्रस्तुति आदि) सिद्ध पदार्थ सिंहासन तक पहुँचाना, फिर अर्पण, वितरण आदि हर कार्य से संबद्ध व्यक्ति को इन नियमों का दृढ़ता से पालन करना पड़ता है। तभी महाप्रसाद की महानता अक्षुण्य है।

महाप्रसाद संबंधी बहु प्रचलित शब्दों का भाव भी समझ लेना चाहिये।

अमुणिहा– भगवान के लिए प्रस्तुत भोग सामग्री का नाम है- अमुणिहा।

नैवेद्य– भगवान के लिए सामने जो सामग्री लाकर रखते हैं। उसे 'नैवेद्य' कहते हैं। इसे अभी तक अर्पण विधि में शामिल नहीं किया गया होता है।

प्रसाद/महाप्रसाद– भगवान को विधि-विधान से अर्पित कर दें, मंत्र-तंत्र सारी विधि के बाद वस्तु भगवान द्वारा ग्रहण कर ली गई- ऐसा माना जाता है। हम जो वस्तु सामने देखते हैं वह उनकी भुक्त सामग्री है। उसे प्रसाद कहा जाता है। जगन्नाथजी को अर्पित सामग्री (चाहे फल हो या अन्न या मिष्टान्न या दूध, छेना या मिश्री.... तोराणी) सब 'महाप्रसाद' कहलाता है। महाप्रसाद के दो विशिष्ट नाम दिये गये हैं-

निर्माल्य– इसे भावरूप में ग्रहण करते हैं। इसमें पदार्थ सेवन केवल नाममात्र होता है। इसमें अन्न को सुखाकर कण रूप में ग्रहण करते हैं। यही कैवल्य कहलाता है। दो अंगुली की चिंउटी में लेकर जीभ पर रखते हैं।

केवल सेवन कर वह देह में लीन हो जाता है। परंतु यह भावरूप में आत्मा को स्पर्श करता है। अतः निर्मल चित्त होकर इसे आत्मस्थ किया जाता है। पहले जमाने में श्रीजगन्नाथ का महाप्रसाद, अर्पण के बाद उतारे गए फूल-पटी, साड़ी, सिरोपाव आदि चीजों को भी निर्माल्य कहा जाता है।

महाप्रसाद– इसे मन भर कर सेवन किया जाता है। महाप्रसाद शारीरिक दृष्टि से सुरुचिपूर्ण, आनंदवर्धक, उत्साहपूर्ण तथा जीवन में अभूतपूर्व दैहिक-आत्मिक अनुभूति प्रदान करनेवाला है। उभय शारीरिक और मानसिक तृप्ति पाकर आदमी गद्‌गद हो जाता है। इसीलिए पहले जमाने में लोग बाईस पावछ पर आते-जाते समय महाप्रसाद देख कर रुकते और वह आनंद पाने हेतु उसे मांग कर खाते थे। न तो लेने वाले के मन में माँगने पर विकार होता है और न देने वाले के मन में देते समय किसी प्रकार की संकुचित भावना रहती। जगन्नाथजी की उदार भावना, आल्हादमयी स्थिति स्वतः उत्पन्न हो जाती- महाप्रसाद लेते और देते समय। सचमुच किसी प्रकार की व्यावसायिकता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। महाप्रसाद लेना जितना आनंदमय था, प्राप्त करना तो अधिक आनंद का कार्य था। ऐसी अद्‌भुत परंपरा विरल थी। इसमें कुछ अच्छिष्ट नहीं होता। इसे निरभिमानी होकर ग्रहण किया जाता है। अतः जीवन भर शुद्धचित्त होकर बैठकर श्रद्धापूर्वक एकाग्र मन से ग्रहण करने की विधि है। परोसने वाला भी इसमें अपने-पराये का कोई भेद-भाव नहीं रखता। बड़ा-छोटा सब समान एक पंक्ति में बैठकर एक साथ इसे ग्रहण करते हैं। सर्वसमभाव एवं सर्व शुचि भाव की इससे महती परंपरा कहाँ मिल सकती है। तभी सूर ने कहा था-

"मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावै!"

संखुड़ी महाप्रसाद– इस में अभड़ा, घी में निर्मित अन्न, खिचड़ी, दाल, डालमा, बेसर, महुर, साग, खटा आदि का भोग अर्पित होता है।

निसंखुड़ी महाप्रसाद– इसे सूखा महाप्रसाद कहा जाता है। इसमें गजा, चकुली, नाड़ी, बड़ी, चड़ेइनेदा, मनोहर, झिली, आरिषा, काकरा,

पोड़पिठा, आदि मिष्टान्न श्रीमंदिर रसोई में निर्मित होकर विभिन्न प्रकार से भोग अर्पित करते हैं। इसे ही 'छप्पन पौटी' भोग कहा जाता है।

अभड़ा-महाप्रसाद– एकदम सही स्थिति का वर्णन कठिन है। परंतु भाषाविद अपना शब्द परिवर्तन का तर्क देकर विशिष्ट व्याख्या करते हैं। 'ब' का 'भ' में परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् जिसे बढ़ाते नहीं यानि परिवेषण नहीं करते। अपनह रुचि आदि आवश्यकता के अनुरूप स्वत: लेते हैं। ऐसा लगता है, पश्चिमी की बहु प्रचलित ''बफे'' पद्धति का जन्म इसी से हुआ है। या यों कह सकते हैं–हमारे यहाँ यह स्वरुचिपूर्वक ग्रहण की परंपरा 'अभड़ा' में आज भी अक्षुण्ण है। परंतु इसमें तात्विक दृष्टि से आकाश-पाताल का अंतर है। भोज अथवा बफे पार्टी में शारीरिक तृप्ति और भौतिक संतुष्टि की बात रहती है। परंतु 'अभड़ा' में शारीरिक तृप्ति इतनी सामान्य स्तर पर होती है कि उसकी चर्चा भी नहीं करते। 'पेट भरने' जैसी बात की बजाय सही परिप्रेक्ष्य में देखें तो 'अभड़ा आत्मपूर्ति' अथवा 'आत्म तृप्ति' अथवा 'आत्म प्रसाद' का कार्य करता है। इस संबंध में पुराण, किंवदंतियाँ, कथा में भरपूर उल्लेख उपलब्ध हैं। यह मोक्षसाधन का भौतिक कार्य है जो अनायास मनुष्य बिना किसी विचार के कर लेता है। सप्रयास, सोच-विचार कर कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ती। जगन्नाथजी की यह सहजता ही इस 'अभड़ा' के कण-कण में प्रकट होती है।

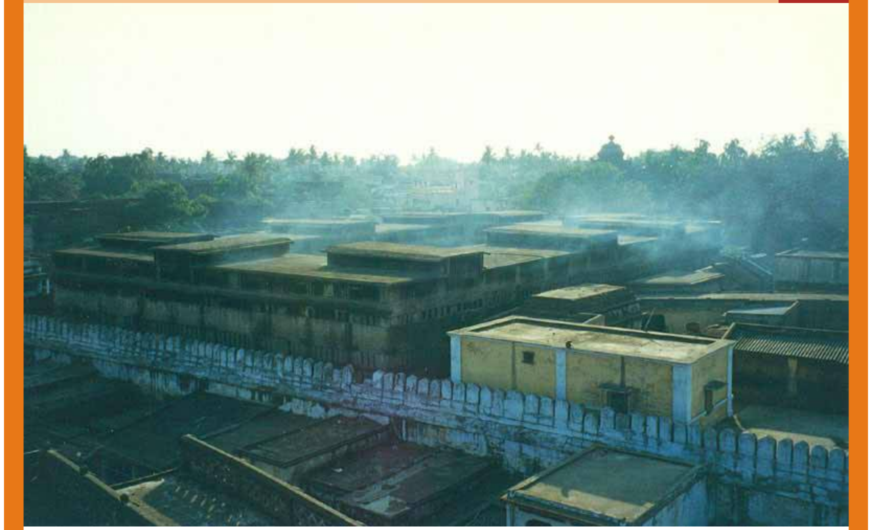

विश्व की सबसे बड़ी पाकशाला

विद्वानों का कहना है कि जगन्नाथ मंदिर का निर्माण कर परंपरा को पुनर्जीवित किया था, ययातिकेशरी ने। अपने शासन काल में उन्होंने पुरी का कायाकल्प कर डाला। श्रीमंदिर को बनाने के साथ-साथ उन्होंने यहाँ जो प्रसाद की परंपरा थी उसे दृढ़ किया। सोमवंशी राजाओं के समय में जगन्नाथ पूजा-उपासना और उसके नाना विधि-विधान की व्यवस्था की गई। उसी में तांत्रिक मतानुसार भोग की बात का उल्लेख आता है। परंतु कई लोग यहाँ रामानुजाचार्य के नेतृत्व में नूतन पद्धति के प्रचलन की बात कहते हैं। अनेकों ने श्रीचैतन्य की परंपरा में जगन्नाथ की रीति-नीति को रख कर देखा है।

आनंद बाजार में जो कुछ 'प्रसाद' वितरण होता है, हर पदार्थ का निर्माण मेघनाद प्राचीर के अंदर बने विशाल रसोईघर (रोसड़ा) में होता है। पहले जब अन्न प्रसाद की बात सोची गई थी तब न इतनी बड़ी भक्तों की संख्या थी और न इतना विराट आयोजन होता था। कूर्मबेढ़ा ने ईशान कोण में छोटा रसोई घर बनाया गया था। बहुत सीमित पदार्थ प्रस्तुत हुआ

करते थे। तब प्रसाद वितरण जैसी व्यवस्था की जरूरत ही नहीं पड़ती। बाईस पावछ पर ही गले सब मिलते। एक-दूसरे को प्रेम पूर्वक महाप्रसाद देते। उस समय लोगों के चेहरे पर हास-उल्लास-आनंद एवं भक्ति-प्रेम भरपूर रहता। मन में त्याग-सेवा-परोपकार और पर मंगल का भाव जन्म लेता रहता। व्यावसायिकता सिर्फ मेघनाद प्राचीर के बाहर लक्ष्मी बाजार में बनी दुकानों में होती। भगवान की छत्रछाया में तो ऐसे विकारों से एक-एक पावछ उठते समय मुक्त होता जाता। तब जाकर उसे महाप्रसाद मिलता। 'यात्री-व्यवसाय' जैसे शब्द का उच्चारण भी पाप समझा जाता था। जगन्नाथ के दर्शनार्थी अतिथियों के मेहमान/अतिथि हैं। अतः पुण्य के भागी बनेंगे। इस पावन दृष्टि से प्रसाद निर्माणकारी सुआर-महासुआर उस रसोई में प्रवेश करते थे।

आबादी बढ़ने के साथ-साथ सारी स्थिति बदलती गई। रसोईघर बहुत छोटा हो गया। अतः वास्तुकारों को बुलवा कर स्थान निर्माण कर भोगमंडप और गर्भगृह तक प्रसाद पहुँचाने के लिए सुविधा तथा भविष्य में विस्तार की दृष्टि तथा रसोई के लिए आवश्यक सामग्री लाने-ले जाने की सुविधा और अंत में रसोई निर्माण के समय अवशिष्टांग के निर्गम की सुविधा पर विचार किया गया। इसका परिणाम वर्तमान रसोईघर है। यह वर्गाकार विराट हॉल जैसा है। सिर्फ एक प्रवेश द्वार है। दूसरी ओर निर्मित प्रसाद ले जाने हेतु सुरंग की तरह का निर्गम द्वार है। ऊपर लाल छत बनी है। यह मुख्य मंदिर तक चली गई है और उससे जुड़ी है। इधर सामान्य जन का चल-प्रचल निषिद्ध है। रसोईघर में भी इतर जनों का प्रवेश नहीं हो सकता। दर्शनार्थी, उत्सक, भक्तगण दीवार तक जाकर वहाँ जगह-जगह बने झरोखों अथवा छेदों में से झांक कर उस विशाल पाकशाला का दर्शन लाभ कर सकते हैं। प्रति दर्शनार्थी को इसके लिए एक रुपया शुल्क चुकाना पड़ता है। खुर्धा महाराज श्री दिव्यसिंह देव (1682-1713) के शासनकाल में इसके निर्माण की योजना बनी। महाराज ने अपने प्रधानमंत्री गोविन्द को इसका दायित्व सौंपा। आगे

चलकर महाराज हरे कृष्ण देव (1770-25) के समय में रसोईघर से श्रीमंदिर के नाटमंडप को जोड़ने वाली विराट छत का निर्माण कार्य संपन्न हुआ। इस रसोईघर में अति वैज्ञानिक पद्धति से चूल्हे बने हुए हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यहाँ सात सौ बावन चूल्हे बने हुए हैं। कुछ चूल्हे तो नगर में स्थित विभिन्न मठों के अधिकार में है। चूल्हों का स्वत्व सुआर लोग पट्टे के रूप में भी लेते हैं। कुछ इस स्वत्वाधिकार की खरीद-बिक्री भी कर सकते हैं। प्रत्येक चूल्हे का आकार बहुत बड़ा होता है। जहाँ जलावन के रूप में सूखी लकड़ी का ही उपयोग किया जाता है। चूल्हा 'भाड़' की तरह ऊपर से ढंका दिखाई देता है। इसमें कई छोटे-बड़े छेद बने होते हैं। इन्हें 'खुफा' कहते हैं। इन छेदों पर विभिन्न आकार की हंडियाँ बिठा दी जाती हैं। पानी डाल कर चावल चढ़ा देते हैं। साथ ही तरकारी, दाल, बेसर, खटाई आदि भी इनमें चढ़ा देते हैं। भात सिद्ध (पक जाने) के बाद नीचे छोटा छेद कर देते हैं। इसमें मांड निकाल सकते हैं। यह मांड एक नाली की राह से सम्मिलित होकर रसोई से निकाल जाता है। इसी को 'पेजनाला' कहा जाता है। बाहर आकर सड़क के किनारे बहुत बड़े कुंड में जमा होता जाता है। नगर के सैकड़ों पशु इस मांड पर निर्भर करते हैं। लोग इस मांड को लेकर उसका उपयोग कर पाते हैं। कई मन चावल के पकने पर निकला मांड कभी बरबाद नहीं होता। आग्रहपूर्वक लोग इस निर्गत का उपयोग करते हैं। अत्यंत वैज्ञानिक पद्धति से एक पर एक कई हंडियाँ रख कर भाप से अन्न सिद्ध करने की पद्धति देख कर दर्शक स्तंभित रह जाता है। अहर्निश सक्रिय इन चूल्हों पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आज के प्रगतिशील कही जाने वाली उठा-पटक और नित परिवर्तनशील खाद्य निर्माण पद्धति का कोई रंग हावी नहीं हो सका। इस वैष्णवाग्नि की अखंडता, पवितत्रता बनी हुई है।

यहाँ चार प्रकार के पाक (प्रस्तुतिकरण होते हैं।)

1) भीम पाक 2) नल पाक

3) सौरीपाक 4) गौरीपाक

1) भीमपाक– इसमें बड़ी के व्यंजन, गुड़ के रस में बने पदार्थ, पके नारियल से निर्मित पदार्थ, पूर देकर बनाये पीठा, उड़द के बड़ा, गुड़ के कांजी आदि बनाये जाते हैं।

2) नलपाक– शाकर, तरकारी, अड़ंगा, तरह-तरह के पना आदि प्रस्तुत किये जाते हैं।

3) सौरीपाक– दूध के पदार्थ, महुवर, जिमीकंद (माटी आलू) के भाजा, केले के भाजा, अदरख की चटनी, घी लौंग मिली मिठाई पिठा। प्रस्तुत करते हैं।

4) गौरीपाक– इसमें मूंग की तरकरी, लेउटिया, कुशला आदि हरी सब्जियों वाले साग बनाये जाते हैं।

महाप्रभु को अर्पित करने हेतु दो बार अन्न प्रसाद का निर्माण किया है। वैसे छः बार प्रसाद लगता है। कार्तिक महीने में और रथयात्रा के अवसर पर तो लाखों लोग के लिए यह महाप्रसाद निर्माण करना पड़ता है। उसी तरह यहाँ निर्मित पदार्थों का भी श्रेणी विभाजन किया जा सकता है।

अ) शाली अन्न– अरवा चावल से निर्मित अन्न, गौघृत से प्रस्तुत और नमक निर्मित अन्न।

आ) क्षीर अन्न– दही से बने पदार्थ, अरवा चावलों में दही मिला कर अन्न प्रस्तुत करते हैं।

इ) दधि अन्न– गौ दुग्ध में चावल डालकर पकाकर प्रस्तुत करते हैं।

ई) शीतल अन्न– अरवा चावल से बने अन्न में बाटुला कर टभा का रस मिलाकर बनाते हैं।

रसोई निर्माण के पहले कुछ विधि-विधान होते हैं। प्रातः कालीन कुछ नैमित्तिक उपचारों के बाद महाप्रभु का रसोई घर साफ किया जाता है। इसे 'रोष-धो पखाल'' अथवा रसोई धोना-प्रक्षालन करना कहा जाता है। इस विधि से पूरा रसोई घर साफ कर लिया जाता है। इस की खबर अमुणिया परिछा और महासुआर को दे दी जाती है। अब निर्धारित पूजापंडा पधारते हैं। वे आकर रोष होम संपन्न करते हैं। इस हवन क्रिया के बाद यह अग्नि लेकर

उस दिन का रसोई कार्य प्रारंभ किया जाता है। इसके लिए गंगा और यमुना नाम के कूप इसी परिसर में बने हैं। वहीं से पानी लेकर कार्यारंभ होता है।

रसोईघर में केवल सुआर-महासुआरों का प्रवेश है। आम जनता केवल बाहर रह कर दर्शन करती है। जिनकी पारी होती है वे उस दिन नया जनेऊ धारण कर प्रवेश करते हैं। नया भींगा अंगोछा पहन कर प्रवेश करते हैं। देह पर कमीज-पेंट आदि की अनुमति नहीं है। जो लोग प्रसाद लेकर भोग स्थान पर पहुँचते हैं, उन भारवाहों के मुँह पर पट्टी बंधी होती है। कंधे पर बँहगी। उन्हें कोई छू नहीं सके। इसकी पूरी व्यवस्था रहती है।

लक्ष्मी भंडार– इस सहकारी भंडार में गुड़, घी, हींग, हलदी, कालीमिर्च, नारियल आदि विविध किराने का सामान बहुत विराट मात्रा में गच्छित रहता है। हजारों बोरे चावल, टनों गुड़, सैकड़ों टिन घी देखकर बहुत विशाल गोदाम का भ्रम हो जाता है। उचित मूल्य की सुलभ एवं विश्वस्त सामग्री सारी यहीं से सुआर गण लेते हैं। अगर किसी समय लाख आदमी अचानक पहुँच जाते हैं, तो भी लक्ष्मी भंडार में किसी वस्तु की कमी नहीं पड़ती। रसोई में भी कोई पकाने की कठिनाई नहीं होगी। चंद घंटों में निर्मित कर भगवान को भोग लगाना संभव है।

इन हांडियों के अलग-अलग आकार हैं। वैसे ये नौ प्रकार की होती हैं:

बाइ हांडि	8 से 12 कि.
समाजि	6 कि.
घासिया	दाल का कुडुवा
समार	हांडी, तरकारी, आदि।
बड़मठ	हांडी, तरकारी, आदि।
सानमठ	हांडी, तरकारी, आदि।
नंबरी	हांडी, तरकारी, आदि।
ढला	हांडी, तरकारी, आदि।
भात	हांडी, तरकारी, आदि।

इस प्रकार ये माटी के पात्र ही व्यवहृत होते हैं। हांडी में छोंक लगाने

की विधि नहीं है। सब कुछ उबाल कर ही पकाते हैं। यह अन्न महाप्रसाद अपने गुण और स्वाद और महक के कारण विश्व में अनूठा होता है। इस रसोईघर की विराट व्यवस्था है। इसके लिए काष्ठ (जलावन) उपलब्ध कराने हेतु ओ.एफ.डी.सी. द्वारा आसपास के जंगलों से झाऊ आदि की उत्तम लकड़ी उपलब्ध करायी जाती है। दूर-दराज के नयागढ़-दसपल्ला आदि से भी विभिन्न प्रकार के काष्ठ खंड लाकर रसोई के अलावा दारु निर्माण, रथ निर्माण एवं अन्यान्य इमारती काम के काष्ठ उपलब्ध कराये जाते हैं। परंतु आजकल कठिनाई आने लगी है।

300 कुम्हारों की एक और श्रृंखला है। यह कहा जा चुका है कि रसोई की हांडी एक बार ही व्यवहृत होती है। अत: प्रतिदिन दक्षिण द्वार की तरफ से बैलगाड़ी भर-भर कर विभिन्न प्रकार की हांडियाँ, कुड़वे, पलम आदि लाकर ढेर लगाते हैं। सुआर गण अपनी आवश्यकतानुसार लेकर उनका उपयोग करते हैं।

इस महाप्रसाद के संबंध में अगणित कथायें किंवदंतियाँ लोक मुख पर प्रचलित हैं। यहाँ सिर्फ दो का उल्लेख किया जा रहा है।

एक भक्त के सामने उसकी पत्नी ने भगवान के महाप्रसाद का अन्न उस पर दाल और बेसर रख कर सामने प्रस्तुत कर दिया। भक्त उसे देख कर विभोर हो उठा। उसे लगा यह श्वेत अन्न श्याम पाक और पीला बेसर आदि सब उन्हीं का रूप है— साक्षात् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की त्रिमूर्ति देख पा रहा है। उसके हाथ वहीं ठिठक कर रह गए। आँख से आँसू झरते रहे। कुछ समय पत्नी उनका विह्वल भाव देखती रही। कुछ नहीं कह सकी। अंत में उसने उन्हें हिला कर कहा- अजी क्या देख रहे हो। ये लीलामय तो सृष्टि के कण-कण में समाये हैं। इनकी लीला अपरंपार है। अन्न के कण-कण में सर्वत्र वे ही वे हैं। इस तरह अपनी अज्ञानता पर विमूढ़ न होना। तब भक्त को होश आया। वह आपे में आ चुका था।

ऐसे ही करीब एक शताब्दी पहले की घटना है। भक्तसमृद्ध था। भगवान को देखकर भाव-विभोर हो गया। बड़पंडा को बुलाकर कहा-

ऐसे महाप्रभु को सवा लाख रुपयों का कुछ भोग लगाया जाये।

बड़पंडा हतप्रभ रह गए। आज इस दुपहर में ऐसी क्या वस्तु लाकर लगाऊ जो सवा लाख रुपये का भोग बन सके।

अंत में श्रीविग्रह के आगे लंबा पसर गया। मानो अपनी बंकिम मुस्कान में प्रभु उसे होंठ रचाने मांग रहे हैं।

बड़पंडा कुछ नहीं समझा। मुड़कर कहा- भक्तप्रवर! आप तो भोग बाद में लगाना, पहले प्रभु की पान खा कर होंठ रचाने की इच्छा हो रही है।

– वे कैसे पान खाते हैं?

– ओ, भई! वे हड्डी के चूने (सीप का चूना) का स्पर्श नहीं करते। हाँ, गजमुक्ता से बना चूना उनके पान पर लगाया जा सकता है।

सेठजी उस बात का मर्म समझ गए। बाप रे कितने गज से मुक्त कुछ मिलें, उनके द्वारा जला कर चूना प्रस्तुत और वह तीन पान के लिए! क्या ऐसा विराट आयोजन संभव है।

अपने अहंकार को समझ गया। किसे कहे? साक्षात् ब्रह्म के आगे पसर गया! हे प्रभु मैं सामान्य जन! आप को तीन पान तक नहीं खिला सकता। महाप्रसाद अर्पण की बात बहुत दूर है! मुझे क्षमा कर दें! ऊपर देखा महाप्रभु के चेहरे पर सही अमिट मुस्कान दिख रही है। प्रभु क्रोध ही नहीं करते। फिर क्षमा कैसी! हमें स्वयं शुद्ध-पूत होना है।

जगन्नाथ जी के विभिन्न वेश

श्री जगन्नाथजी की रूपराशि की कल्पना करना असंभव हैं इस रूपाकार में वे निराकार कैसे आते हैं, क्यों आते हैं यह भी सिर्फ कल्पना का ही विषय है। स्पष्ट व्याख्या करना असंभव है, परन्तु बाह्यरूप में इस आकार में उनके 'वेश' की भूमिका सर्वाधिक है। जगन्नाथजी को मूलत: जिस रूप में हैं, उसमें कभी नहीं आ सकते। नित-नये वेश धारण कर अखंड लीला का निदर्शन करते हैं।

महाप्रभु के वेश में मुख्यत: तीन अंग होते हैं :

क) वस्त्र ख) आभूषण ग) पुष्पादि

क) वस्त्र– ये तीनों अंश नित्य नैमित्तिक वेश में किये जाते हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण वेश दोपहर ग्यारह बजे किया जाता है। प्रात: कालीन उपचार एवं सार्वजनिक दर्शन (साहाण मेला) संपन्न होने के बाद गर्भगृह तक अथवा रत्नसिंहासन तक भक्तों का प्रवेश निषेध हो जाता है। काठ के मंच पर चढ़ कर तीन सेवक तीनों विग्रहों को वेश कराते हैं। इसमें जो वस्त्रावृत करते हैं, उसका रंग प्रतिदिन निर्दिष्ट रहता है। यहाँ उसकी सूची देना समीचीन होगा। इसी प्रकार भगवान का पौढ़ने के साथ जो वेश किया जाता है, उसे 'बड़सिंगार वेश' कहा जाता है। यह श्रृंगार रस का प्रतीक है। तब ठाकुरजी को सजा कर संगीत और गीत गोविन्द गायन के साथ प्राचीन काल में माहारी नृत्य परिवेषण होता था। इस प्रकार जगन्नाथजी को प्रतिदिन मध्यरात्रि में सुन्दर ढंग से सजा कर पौढ़ाया जाता है।

सोमवार	–	काले छींट मिला सफेद वस्त्र
मंगलवार	–	पचरंग का वस्त्र
बुधवार	–	नील वस्त्र
वृहस्पतिवार	–	बासंती (पीला) रंग का वस्त्र
शुक्रवार	–	शुक्ल वस्त्र

शनिवार	–	श्यामवर्णी वस्त्र
रविवार	–	रक्तिम वर्ण वस्त्र

ख) आभूषण– मणि-माणिक, रत्न, स्वर्ण आदि के विभिन्न आभूषण निर्धारित रीति के अनुसार धारण करते हैं। प्रतिदिन पूर्वाह्न की पूजा-स्नान के बाद धारण करते हैं। इनमें मस्तक पर हीरा अत्यंत देदीप्यमान रहता है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न गहने पहनाये जाते हैं। कुछ अवसरों पर 'सोना वेश' यानि सोने के अलंकार बहुत अधिक धारण करते हैं। इसमें सर्वाधिक गहनों का प्रयोग किया जाता है।

ग) पुष्प– विभिन्न फूलों से महाप्रभु का श्रृंगार किया जाता है। इनमें सर्वाधिक प्रिय पद्म, तुलसी, दवणा, गेंदा, चंपा, केतकी आदि होते हैं। कुछ अवसरों पर फूलों से विशेष भाव में सजा कर उनका अद्भुत रूप निखारा जाता है। प्रतिदिन प्रात: रात के बासी फूल परिहार कर देते हैं। फिर नये ताजा फूलों से उनको सजाते हैं। अत्यंत महत्व की बात है- श्रीजगन्नाथजी को कभी ग्रंथियुक्त माला अर्पित नहीं की जाती। एक प्रसिद्ध कहावत है- "एठि धंडा चले", यानि यहाँ निर्ग्रंथि माला अर्पित होती है। अगर भक्त गांठ लगी माला लाता भी है तो अर्पण से पहले गांठ खोल दी जाती है, उसे 'धंडा' कहा जाता है। ये मुक्त मालायें विभिन्न आकार की होती हैं। श्रीमंदिर की फुलवारी में इतने फूल संभव नहीं होते, जितने की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। अत: आसपास के कटक-भुवनेश्वर, खुर्धा आदि के समर्थ भक्तों से अपेक्षा रहती है कि भगवान की सेवा में पुष्प पहुँचायें। नि:स्वार्थ भाव से प्रभु की सेवा में पुष्प, पत्र (कटहल के पत्ते, तुलसी और दयणा के गुच्छ) आदि भेजते रहते हैं।

इसी प्रकार वेश में सदा चंदन और कस्तूरी का प्रयोग महत्व रखता है। पहले नेपाल से कस्तूरी नियमित आती रहती थी। नेपाल नरेश और वहाँ की प्रजा का श्रीजगन्नाथजी से गहरा संबंध है। नेपाल नरेश वहाँ से कस्तूरी प्राप्त कर अपने प्रतिनिधि के हाथों अथवा नेपाली ऍबेसी के जरिये यह दुर्लभ सामग्री नियमित भेजते थे। अब भी रथयात्रा के अवसर

पर और नवकलेवर के अवसर पर कस्तूरी भेजते रहते हैं। बीच में भी कभी-कभी श्री दरबार का प्रतिनिधि आकर कस्तूरी भेंट कर जाता है। परंतु चंदन के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। अत: जगन्नाथजी के किसी सेवक/प्रतिनिधि को कर्नाटक जाकर इसकी व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रत्यक्षत: वहाँ से सफेद चंदन और लाल चंदन उभय मंगाया जाता है। जिससे वेश में शुद्धता और उसकी गरिमा बनाई रखी जा सके। इसी प्रकार केशर भी बाहर से मंगाते हैं।

इन नित्य की आवश्यकताओं के अलावा विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट सामग्री यथास्थान से मंगाने की व्यवस्था की जाती है।

भगवान को वेश करने में जिनकी भूमिका रहती है, सेवक संप्रदाय सामग्री लाने, सजाने, उतारने, रूप बनाने में नियुक्त रहते हैं। इनमें मुख्यत: विश्वकर्मा नियोग, रूपाकार, रंगत, पाटरा, फूलदासी, पालिया, खंटिया, सिंहारी, भंडार मेकाप को विभिन्न भूमिकायें निभानी पड़ती हैं।

जगन्नाथजी विभिन्न भावधाराओं, संप्रदायों तथा दार्शनिक मतवादों की मान्यताओं की पूर्ति कर पाते हैं। इन सबका समाहार कुछ तो दैनिक नीति में हो जाता है। कुछ सांवत्सरिक नीतियों में आता है। विशेष अवसरों के पालन में भी यह दृष्टि दिखाई देती है। वैष्णव, शैव, गाणपत्य, शाक्त, सौर, आदि के इष्टदेव जगन्नाथ में स्वीकृत हैं। अत: इन सभी का पावन तीर्थ पुरी है। इनके अपने-अपने मठ, आश्रम, मंदिर एवं विश्राम स्थल, उपासना गृह एवं मंडप निर्मित हैं। श्रीजगन्नाथजी के वेशों में भी इनके विविध संकेत मिल जाते हैं। आज वर्षभर में जितने वेश सम्पन्न होते हैं, उनमें कहावत है बारह महीने के तेरह पर्व प्रमुख हैं और उनके तेरह वेश होते हैं। ये वेश तिथि के अनुसार संपन्न होते हैं, वह विशेष पर्व होता है।

इन वेशों में एक राम वेश होता है।

दो वामन के वेश होते हैं

एक गणेश/गणपति/गजवेश होता है

एक नृसिंह का वेश होता है।

सात कृष्ण के वेश होते हैं।

अर्थात् ये वेश जगन्नाथजी की विविधता के निदर्शन नहीं हैं, उनकी समावेश कारिणी क्षमता के प्रतिरूप हैं। कुछ वेश तो प्रकृति के साथ उनके घनिष्ठ संबंध का प्रतिफलन हैं। कुछ वेश उनके मानव के बहुत निकट की स्थिति को प्रकट करते हैं। जगन्नाथजी के वेशों की इतनी विविधता और व्यापकता उनके विराट कैनवेस की सूचना देती है।

चालीस जीवन मूल्य

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुद्धता, सन्तोष, आत्मसंयम, शास्त्राभ्यास, भगवद्भक्ति, आध्यात्मिक विवेक, अनासक्ति, आत्मानुशासन, इन्द्रिय निग्रह, सहिष्णुता, पवित्रता, क्षमा, साहस, करुणा, औदात्य, आर्जव, परमार्थ, अमानित्व, पाखण्ड से मुक्ति, परोक्ष निन्दा का भाव, सीधापन, विनय भाव, सहनशीलता, सेवाभाव, सत्संगति, जप, ध्यान, अद्वेष, निर्भयता, स्थिर चित्तता, निरहंकार, मैत्रीभाव, उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठा और धीरज।

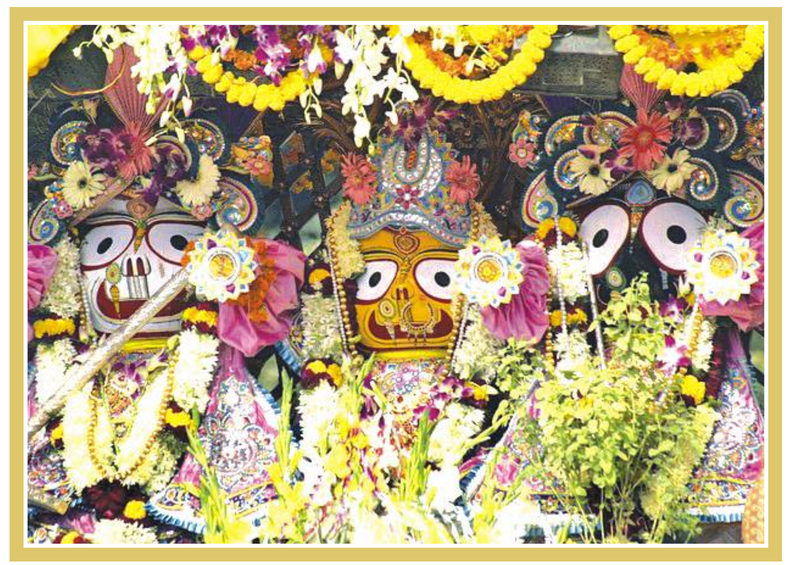

स्कन्दपुराण में जगन्नाथ जी

प्रसंगानुसार मुनियों ने जैमिनि जी से प्रश्न किया– जहाँ काष्ठ प्रतिमा के रूप में साक्षात् महाप्रभु जगन्नाथजी विराजमान हैं, वह पुरुषोत्तम क्षेत्र कहाँ है? जैमिनि जी ने उत्तर दिया कि उत्कल नाम से प्रसिद्ध एक परम पावन देश है, जहाँ अनेक तीर्थ और बहुत से पवित्र मन्दिर हैं। वह प्रदेश दक्षिण समुद्र तट पर बसा है। उसमें रहने वाले पुरुष सदाचार के आदर्श हैं। वहाँ के ब्राह्मण उत्तम आचार और स्वाध्याय से सम्पन्न हो हमेशा यज्ञ कर्म में लीन रहते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ और वेदाध्ययन की प्रवृत्ति वहीं से होती है। वहाँ के निवासी ब्राह्मण वेद–शास्त्रों के प्रवर्त्तक हैं। वह देश 18 विद्याओं का खजाना है। वहाँ जगन्नाथजी की आज्ञा से घर–घर में लक्ष्मी का निवास है। उस देश के निवासी लज्जावान, विनयशील, चिन्तारहित, रोगमुक्त, मातृ–पितृ भक्त, सत्यवादी तथा विष्णुभक्त हैं। वहाँ सभी जगन्नाथ भक्त हैं। उस प्रदेश के लोग दीर्घजीवी हैं। स्त्रियाँ, रूपवती, सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत, कुल, शील और वर्ण के अनुसार आचार–विचार का पालन करनेवाली हैं।

वहाँ के क्षत्रिय कर्त्तव्यपालक हैं। वे प्रजा की रक्षा में दक्ष हैं। वे दान देने में उदार और सभी शास्त्रों के जानकार हैं। वे याचकों को उनकी कामना से कहीं अधिक दान देते हैं।

वहाँ के वैश्य कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा का कार्य करते हैं। वे अपनी भक्ति और धन से देवता, ब्राह्मण और गुरु को खुश रखते हैं। वहाँ एक घर पर पधारे याचक को दूसरे घर पर जाने की आवश्यकता नहीं होती। उस देश के शूद्र भी संगीत, साहित्य और कला में कुशल हैं। वे प्रिय वचन बोलते हैं। वे मन, वचन और कर्म से ब्राह्मणों की सेवा में लगे रहते हैं।

स्कन्दपुराण में महाप्रभु जगन्नाथ– मुनियों के प्रश्न पूछने पर जैमिनि जी ने बताया कि सतयुग में इन्द्रद्युम्न नामक एक श्रेष्ठ राजा हुआ। उसका जन्म सूर्यवंश में हुआ था। वह ब्रह्मा जी से पाँच पीढ़ी नीचे था।

वह सत्यवादी, सदाचारी, शुद्ध और सात्विक राजा था। प्रजा को अपनी सन्तान समझ कर वह सदा न्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करता था।

एक दिन राजा ने अपने पुरोहित से कहा– आप उस क्षेत्र का पता लगाइए, जहाँ महाप्रभु जगन्नाथ के वह साक्षात् दर्शन कर सकें। उसी समय एक व्यक्ति आया और अपने आप यह बताया कि भारत वर्ष में उड्र नाम से एक प्रसिद्ध देश है। उस देश में दक्षिण समुद्र के किनारे श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र है, जहाँ नीलांचल पर्वत है। वह प्रदेश चारों ओर से वनों से घिरा है। उसके बीच में एक कल्पवृक्ष है, जिसके पश्चिम में एक रोहिणी कुण्ड है। उसके जल को स्पर्श करने से ही मोक्ष मिल जाता है। उसके पूर्वी तट पर इन्द्रनीलमणि की बनी हुई भगवान वासुदेव की प्रतिमा है, जो साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली है। उस कुण्ड में स्नान करके जो महाप्रभु जगन्नाथजी के दर्शन करता है, वह मोक्ष पाता है। वहाँ शबरद्वीप नाम का एक आश्रम है। उस आश्रम से एक रास्ता उनके मन्दिर तक जाता है। वहाँ महाप्रभु जगन्नाथजी शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी साक्षात् विराजमान हैं। यह कहकर वह व्यक्ति अन्तर्ध्यान हो गया।

पुरोहित ने सलाह दी कि हम सब चलकर वहीं बस जाएँ, मानव जीवन की सफलता इससे बड़ी क्या हो सकती है? राजा इन्द्रद्युम्न ने पुरोहित की बात मान ली। पुरोहित का छोटा भाई विद्यापति समस्त विश्वसनीय पुरुषों को लेकर उड्र देश को चल दिया। महानदी को पार कर वह एकाग्र वन पहुँचा। महाप्रभु जगन्नाथ की खोज करते हुए वह नीलांचल जा पहुँचा। वहाँ से आगे कोई रास्ता नहीं था। तभी उसे अलौकिक वाणी सुनाई पड़ी। उस आवाज को सुनकर वह पीछे–पीछे चल दिया। कुछ दूर पर उसे शबरद्वीप आश्रम मिला। वहाँ भक्तों को उसने प्रणाम किया। ठीक उसी समय अपनी पूजा समाप्त करके विश्वावसु वहाँ आया। यह देखकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। उसने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह वहाँ नीलमाधव के दर्शन के लिए आया है। उसने यह भी बताया कि जब तक वह अवन्ती के राजा को नीलमाधव के विषय में

बतला न देगा, तब तक वह निराहार ही रहेगा। उस ब्राह्मण ने नीलमाधव के दर्शन की इच्छा प्रकट की। विश्वावसु ने पहले तो उस स्थान को बताने से मना कर दिया। विद्यापति नामक ब्राह्मण ने देखा कि विश्वावसु की ललिता नाम की एक रूपवती कन्या है। उसके पास वह गया और सीधे उससे विवाह करने का प्रस्ताव रख दिया। कालान्तर में ललिता और विद्यापति का विवाह हो गया और अब वे दानों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन विद्यापति ने ललिता से कहा कि वह अपने पिता से पूछे कि नीलमाधव के पूजास्थल तक वह कैसे जा सकता है। उसने ललिता को यह भी चेतावनी दी कि उसकी बात अगर वह नहीं मानेगी तो उसे वह छोड़कर चला जाएगा।

पिताजी के आने पर उदास ललिता ने सारी बात बताई। विश्वावसु अब तो लाचार था। वह एक शर्त पर विद्यापति को नीलमाधव के दर्शन कराने को तैयार हो गया। उसने कहा कि वहाँ जाते और आते समय विद्यापति की आँखों पर पट्टी बंधी रहेगी। वह जैसे ही नीलमाधव के दर्शन करेगा, पुनः उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी जाएगी। हुआ ऐसा ही, लेकिन ललिता ने अपने पति के गमछे के दोनों छोरों पर सरसों बाँधा दी जो आते-जाते समय गिरती रही। विद्यापति नीलमाधव के दर्शन कर लौट आया। कुछ दिनों बाद सरसों के बीज से अंकुर निकले और बड़े होकर पीले फूलों की पगडंडी स्पष्ट दिखाई देने लगी। विद्यापति अब स्वयं रास्ता पहचानकर अकेले निकला और नीलमाधव के दर्शन कर उस स्थल का पता पाने में सफल हो गया। वह लौटकर अवन्ती आया और राजा को समाचार सुनाया। राजा इन्द्रद्युम्न उनके साथ नीलांचल आए। जब वे उस स्थान तक पहुँचे, तब तक गोपनीयता नष्ट होते ही नीलमाधव अन्तर्ध्यान हो चुके थे। राजा को केवल निराशा ही हाथ लगी।

एक रात राजा को एक दिव्यवाणी सुनाई दी कि समुद्र तट पर उन्हें एक पवित्र दारु लट्ठा तैरता मिलेगा। उसकी देव प्रतिमा बनाकर वह उन्हें

प्रतिष्ठित करें। कहा जाता है कि राजा इन्द्रद्युम्न ने जल में तैरते हुए उस काष्ठ को लाकर जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की प्रतिमाएँ बनवाईं। इन्द्रलोक जाकर ब्रह्माजी को साथ लाकर उन विग्रहों में प्राण-प्रतिष्ठा करवाई। आज भी श्री मंदिर प्रांगण का कल्पवट आदि इस पौराणिक कथा को सत्य रूप प्रदान करते हैं।

वैविध्यमय रसराज : श्रीजगन्नाथ

प्रतिदिन के वेशों के अलावा मौसम के अनुसार भी वेशों के परिवर्तन की बात स्पष्ट है। यहाँ कुछ वशों के स्वरूप और लक्ष्य को संक्षेप में दिया जा रहा है-

गणेश वेश– ज्येष्ठ पूर्णिमा को जगन्नाथजी का 108 घड़ों से स्नान होता है। इसके बाद स्नानवेदी पर ही उनका अपरान्ह में गणपति वेश होता है। इसमें गण के साथ सबको शामिल कर लेते हैं। इसे ही गजानन वेश कहा जाता है। इस वेश की सामग्री गोपालतीर्थ मठ और राघवदास मठ से उपलब्ध करायी जाती है।

राधादामोदर वेश– आश्विन शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल दशमी तक प्रतिदिन यह वेश किया जाता है। इस वेश में कटिप्रदेश में 'ओड़ियानी' शोभा देती है। ललाट पर सोने का तिलक, सोने के सूर्य-चंद्र, कानों में मकर कुंडल, ग्रीवा में सोने का हार, हाथ में नीलभुजा। तीनों मूर्तियों को फूल की नाक चनी पहनाते हैं। श्रीचैतन्यदेव के मतानुसार राधा-कृष्ण का मिलन तनु जगन्नाथ हैं। उसका मूर्त रूप यह राधा दामोदर वेश है। इसमें अनेकानेक स्वर्ण अलंकार धारण करते हैं।

पद्मवेश– माघ शुक्ल प्रतिपदा से बसंत पंचमी तक हर बुध और शनि को रात में यह वेश करते हैं। इसमें ठाकुरजी पद्माच्छादित होते हैं।

किंवदंती है कि भक्त साधक मनोहर दास श्रीक्षेत्र आ रहे थे। रास्ते में उनका मन किया कि इस पोखर के सारे पद्‌म लेकर महाप्रभु को अर्पित करूँ। भगवान ने उनकी मनोकामना पूरी करने के लिए पोखर के सारे फूल खिला दिये। उन्हें उन्होंने ग्रहण किया। तब से परंपरा पड़ गई पद्‌मवेश धारण करने की।

इस वेश के लिए आवश्यक सामग्री पद्‌मपंखड़ियों सहित तीन मुखौटे, साथ में चूल और किरोटि लगी होती है। यह सामग्री श्रीमंदिर से संलग्न बड़छता मठ से उपलब्ध करायी जाती है। आज भी यह परंपरा अक्षुण्ण है।

चाचेरी वेश– यह वेश फाल्गुन शुक्ल दशमी से त्रयोदशी तक है। इसमें भगवान के चलविग्रह के दर्शन होते हैं, 'दोलगोविन्द' के रूप में। वे जगन्नाथ बल्लभ मठ जो हैं, वहाँ फाग खेलते हैं। चतुदर्शी के दिन उन्हें लाल वस्त्र में मंडित करते हैं। यही चाचेरी वेश कहलाता है। इसमें चार वर्ण कुंडल और दो तड़की से विभूषित किया जाता है। मेकाप श्री जी के स्वांग में चंदन चर्चित करता है। इसके बाद नूतन वस्त्रवृत किया जाता है।

भक्त इस चाचेरी लीला अथवा फाग खेलने की विधि के दर्शन कर आल्हाद में भर जाता है। फागुन और बसंत आनंद उल्लास तथा उत्साह का समय होता है। श्रीमंदिर में जगन्नाथजी भी इसमें शामिल होकर अपनी भावप्रियता प्रकट करते हैं।

सोना वेश– महाप्रभु सृष्टि समस्त सौंदर्य और ऐश्वर्य के उत्स हैं। जब रत्न सिंहासन से उतर कर बड़दाण्ड पर रथारूढ़ होते हैं (रथयात्रा के

अवसर पर) भक्त सागर उन्हें देख कर कह उठता है–

"रथेतु वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न मुच्यते"

यह उनका आध्यात्मिक भाव निदर्शन है। विश्व के कोने-कोने से आये भक्त उनकी महिमा के साथ ऐश्वर्य भी देखने को लालायित हो जाते हैं। यह ऐश्वर्य रत्नसिंहासन पर जो विजयादशमी, पुष्याभिषेक (पौष पूर्णिमा), दोल पूर्णिमा (फाल्गुन पूर्णिमा), रास पूर्णिमा (कार्तिक पूर्णिमा) आदि अवसरों पर देख लेते हैं। परंतु जो लोग रत्नसिंहासन तक नहीं जा पाते अथवा रथयात्रा महोत्सव में शामिल होने आते हैं, उनकी इच्छा भी पूरी होगी। अत: रथयात्रा संपन्न होने के उपरान्त श्रीमंदिर में पुन: प्रवेश करने से पहले बड़दाण्ड पर ही रथारूढ़ स्थिति में सोना वेश धारण करते हैं जगन्नाथ जी। सामान्य जनता, भक्तों के ही आराध्य नहीं, बल्कि राजा-महाराजा और सभी उच्च वर्ग वालों के भी महाराजाधिराज हैं। अत: उन्हें इस राजराजेश्वर रूप में वेश कराते हैं। श्रीमंदिर के भंडार को रत्नभंडार कहा जाता है। अकलंति हीरा, नीलम, मणि, माणिक्य, मोती, स्वर्ण, रौप्यादि के विविध अलंकार हैं। उनमें से कुछ अत्यंत दिव्य स्वर्णालंकार लाकर विधिपूर्वक उन्हें वेश कराते हैं। इनमें श्रीभुज, किराट, ओड़ियाणी, कुंडल, चंद्रसूर्य, माला, तिलक आदि गहनों से उभय बलभद्र और जगन्नाथ को सज्जित करते हैं। तीनों देवताओं के आयुध अलग-अलग होते हैं। इसमें जगन्नाथ के स्वर्णचक्र एवं रौप्य शंख, बलभद्र को हल-मूसल तथा सुभद्रा को तड़गि से सज्जित करते हैं। इसके अलावा तीनों के कुछ अलग रत्नजटित गहने होते हैं, जो इस अवसर पर पहनाये जाते हैं। परंतु इधर कई वर्षों से गहनों की संख्या कुछ कम कर दी गई है। अत: अमूल्य रत्न आदि का प्रयोग रथारूढ़ ठाकुर के लिए नहीं कर पाते। फिर भी विग्रहों को राजराजेश्वर वेश में सजाने के बाद भक्त

बड़दाण्ड पर खड़े होकर उनकी ओर देखता है तो अनायास कह देता–

तेरा जैसा प्रभु अन्यत्र कहाँ!
जाऊं कहाँ तजि शरण तिहारी

कभी इस परंपरा का प्रारंभ राजे–महाराजाओं ने किया होगा! परंतु आज तो सर्व सामान्य जन समागम में आनंद उल्लास, प्रेरणा और प्रसाद के लिए महाप्रभु का अत्यंत मनमोहक वेश किया जाता है। सदियों से इस दिन लाखों लोग बड़दाण्ड पर उपस्थित रह कर भगवान के इस ऐश्वर्यशाली वेश का दर्शन करते हैं।

कवि कहते हैं–

नाहि से बेशर उपमा
बाक्य के बर्णिम महिमा!!

(इस में वेश की कोई समतुल्य उपमा नहीं है। शब्दों में इसके सौंदर्य और महिमा का बखान असंभव है।

रघुनाथ वेश– रघुनाथ प्रभु का जन्म नक्षत्र पुष्या है। अत: पुष्या नक्षत्र के समय किसी भक्त के अनुरोध पर विचार कर आवश्यक अर्थ प्रदान करने से यह वेश संभव है। परंतु रघुनाथजी के साथ पूरी रामराज्य सभा विराजमान होना विधेय है। अत: यह अत्यंत खर्चीला वेश होता है। पिछले सौ वर्ष में एक बार भी इसका आयोजन कर पाना संभव नहीं हुआ।

एक किंवदंती के अनुसार संत तुलसीदास यहाँ पधारे, तब उनके अनुरोध पर भगवान को रघुनाथ वेश धारण करना पड़ा था।

रघुनाथजी के रूप में जगन्नाथ और बलभद्र को लक्ष्मण रूप में तथा सुभद्रा को विभिन्न अलंकारों से सजाते हैं। इसके अतिरिक्त रत्नसिंहासन

के पास मंच निर्माण कर भरत, विभीषण, सुषेण, दधिमुख, नल, जामवंत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, अंगद, वायुमुख हनुमान, नील, नारद, इंद्र, ब्रह्मा, कुबेर, नैरुत, वशिष्ठ, वामदेव, जामाली, कश्यप, कात्यायन, गौतम, विजय, वायुदेव, गवय, ऋषभ, द्विविध, नीयुध और सुमंत आदि की मूर्ति बनाकर विराजमान की जाती है। तब जाकर राम की राजसभा के पात्र, मंत्री, परिषद, सदस्यादि पूरे होते हैं।

भगवान जगन्नाथ को धनुषबाण एवं निषंग धारण करना पड़ता है। वे वीरासन में विराजमान रहते हैं। बाकी प्राय: सभी मूर्तियाँ दंडायमान स्थिति में रहती हैं। यह दृश्य अत्यंत मनमुग्ध कर देता है। राम और लक्ष्मण दोनों को धनुष धारण करना पड़ता है। इसके अलावा हार, बाजू आदि बहुमूल्य रत्नाभूषण धारण कर अद्भुत दृश्य उपस्थित करते हैं।

''अपने जन के कारणे श्रीकृष्णभये रघुनाथ'' वाली उक्ति सार्थक होती है। स्वयं प्रभु कहते हैं कि जो मुझे जिस भाव से भजता है, मैं उसी रूप में उसके आगे दंडायमान होता हूँ। महाप्रभु का रघुनाथ और 'राम पंचायत' के रूप में दर्शन दुर्लभ है। इसकी एक हल्की–सी झलक श्रीमंदिर में रसोईघर के पास बने रघुनाथ मंदिर में मिल जाती है। वहीं पर जगन्नाथजी के रघुनाथ रूप को आधार कर द्वार पर ही भित्तिचित्र अंकित है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। जगन्नाथ ही जगत के नाथ हैं। अत: करहीन भी वे ही हैं और करयुक्त धनुर्धर भी वे ही हैं। इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं।

गजउद्धार वेश– माघ पूर्णिमा को यह वेश किया जाता है। भगवान पुराण प्रसिद्ध गज को ग्राह से उद्धार करने की कथा इस वेश के आधार में है। चूंकि इसमें भगवान की महिमा का चाक्षुष दर्शन हो पाता है। भक्त इस वेश के लिए अत्यंत उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं।

इस अवसर में जगन्नाथ जी को विष्णु रूप में गरुड़ की पीठ पर आरोहण करते हैं। चतुर्भुज वेश में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करते हैं। उनकी गोद में लक्ष्मी आकर विराजमान होती है। माणिक्य का तिलक धारण करते हैं। अनेक बहुमूल्य रत्नाभूषण पहना कर यह दिव्य वेश किया जाता है। बलभद्र शशिवर्ण शुक्लांबर धारी आदि नारायण होते हैं। गज को रत्नसिंहासन के पास अवस्थापित किया जाता है। मध्याह्न भोग हो जाने के बाद इस वेश में सज्जित करते हैं। आयुधों के अतिरिक्त किरीट, कुंडल, सूर्य-चंद्र, बाजूबंद, माला, नाकचना, पद्मकली के अलंकार धारण करते हैं। गज के अलावा समुद्र का आभास कराते हैं।

इस वेश का अनुरोध भक्तों की ओर से होने की विधि है। अतीत में यह वेश पुरी महारानी के अनुरोध पर किया गया था। आगे चल कर व्यक्तिगत अनुरोध भी स्वीकार किये गये। अब विशिष्ट उद्योगपति वंशीधर पंडा परिवार की ओर से कुछ राशि फंड में जमा कराई गई, उसके ब्याज से प्रतिवर्ष यह वेश श्रीमंदिर प्रशासन की ओर से संभव हो पा रहा है।

हरिहर वेष– इसमें शिव-विष्णु उपासकों के बीच समन्वय को महत्व दिया गया है। इस वेश में भगवान का आधा वस्त्र श्यामवर्ण का होता है और आधा अवशिष्टांश शुक्ल वर्ण का होता है। इस रूप में दोनों की अभिन्नता का भाव व्यक्त होता है।

कालिय दलन वेष– कृष्ण लीला को लेकर जगन्नाथ मंदिर में अनेक प्रथाओं, परंपराओं का प्रचलन है। भाद्र पद कृष्ण एकादशी को कालिया दलन वेश में प्रभु के दर्शन होते हैं। रक्त वस्त्र में घिरे

रहते हैं। मुख मंडल पर सोने के पत्ते की तरह तिलक (चिता) भी सोने का होता है। मस्तक पर मयूरचंद्रिका धारण करते हैं। विलंबित स्वर्ण निर्मित कुंतलों की अनूठी छवि रहती है।

वेशों की परंपरा बहुत लंबी है। इनमें कुछ के नाम यहाँ दिये जाते रहे हैं:

वामन वेश – भाद्रव शुक्ल द्वादशी-त्रयोदशी
लक्ष्मीनारायण वेश – कार्तिक पूर्णिमा (राजराजेश्वर)
ठियाकिया वेश – कार्तिक शुक्ल एकादशी
नागार्जुन वेश – कार्तिक के पंचक छः दिन हों तो यह वेश योद्धा के रूप में महाप्रभु को प्रस्तुत करता है।
वनभोज वेश – भाद्रव कृष्ण दशमी
प्रलंबासुर वध वेश – भाद्रव कृष्ण द्वादशी
कृष्ण बलराम वेश – भाद्रव कृष्ण त्रयोदशी
बांक चूड़ वेश – कार्तिक शुक्ल द्वादशी
त्रिविक्रम वेश
आड़किया वेश – कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी
राजा वेश – आश्विन शुक्ल दशमी

लक्ष्मीनारायण वेश

नागार्जुन वेश

प्रलंबासुर वध वेश

कृष्ण बलराम वेश

बांक चूड़ वेश

आड़किया वेश

इन वेशों का वर्णन, इनकी महिमा का कथन असंभव है। रूप, सौंदर्य, माधुर्य के साथ-साथ दर्शन और धर्म के रूप में भी वे वेश एक-एक अकल्पनीय उत्सव हैं। भक्तों के लिए इनका दर्शन दिव्यानुभूति दायक है। अत: वर्ष भर में होने वाली यह क्रिया-प्रक्रिया श्री क्षेत्र को सदा उत्सव मुखर बनाये रहती है।

महाप्रभु का नव कलेवर

(क) नव कलेवर : क्या और क्यों?

महाप्रभु जगन्नाथ जी का नवकलेवर शास्त्रीय परम्परा के अनुसार निर्धारित समय पर पुरी में सम्पन्न होता है। बारह वर्षों में (या इससे कम या अधिक अंतराल के बाद) जब दो आषाढ़ मास आते हैं, तब यह महोत्सव संपन्न होता है। शास्त्रीय विधान के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों में भी महाप्रभु के नवकलेवर की अनेक घटनाएँ मिलती हैं।

अनेक बार श्रीक्षेत्र और महाप्रभु को बाहरी आक्रमण का सामना करना पड़ा था। ऐसे संकट की घड़ी में महाप्रभु को पुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़ना पड़ा था। बाद में संकट टल जाने पर महाप्रभु की नवकलेवर के साथ श्रीक्षेत्र में पुन: प्रतिष्ठा की गई। एक बार विदेशी रक्तबाहु ने आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप महाप्रभु के पलायन की घटना का वर्णन मिलता है।

मादला पांजि (पंचांग) के अनुसार ओड़िशा में नरपति शोभन देव के शासनकाल के दूसरे वर्ष में रक्तबाहु के सेनापतित्व में यवनों ने पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण किया था। वे शोभेन देव भौमकर वंश के शुभंकर देव प्रथम थे और उनका शासन काल आठवीं एवं नवीं शताब्दी का रहा था। रक्तबाहु थे राष्ट्रकूट राजा तृतीय गोविन्द। रक्तबाहु के नेतृत्व में पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण करने वाले यवन 'मुरुण्ड' जाति के थे। रखाल दास बनर्जी के मतानुसार वे कुशान थे। इस बारे में विचारों में भिन्नता के बावजूद कहा जा सकता है कि श्रीक्षेत्र-पुरी और श्रीजगन्नाथ मन्दिर

किसी एक विदेशी आक्रमणकारी दल का शिकार हुआ था। मादला पांजि में वर्णित तथ्य के अनुसार शोभन देव के काल में दिल्ली से रक्तबाहु के आक्रमण के दौरान महाप्रभु के सेवकों ने राजा की अनुमति से महाप्रभु की प्रतिमा को सुनुपुर गोपाली में ले जाकर एक मंडप में विराजमान किया था। मुगलों के आक्रमण के समय सेवकों ने महाप्रभु को जमीन में गाड़कर उस पर एक वृक्ष लगा दिया था।

रक्तबाहु के श्रीक्षेत्र पर आक्रमण के पूर्व ही महाप्रभु के सेवक आने वाली विपत्ति से अवगत हो गए थे। उस ऐतिहासिक घटना के प्रमाण स्वरूप सोनपुर से गोपाली ग्राम के बीच एक जगन्नाथ मंदिर अभी भी है। रक्तबाहु ने जगन्नाथ मंदिर को खाली देखा तो क्रोध से उन्मत्त होकर विध्वंशलीला प्रारंभ कर दी और श्रीक्षेत्र श्रीहीन हो गया। यह युग ओड़िशा का अन्धकार युग माना जाता है।

इसी प्रकार 146 वर्ष बाद केशरी वंश के संस्थापक ययाति केशरी के राज्यकाल में इस अन्धकारमय युग का अवसान हो गया। उन्होंने महाप्रभु का पुनरुद्धार कराकर श्रीमंदिर को पुनः प्रतिष्ठित कराया। लेकिन इतने वर्षों तक जमीन में गड़े होने के कारण विग्रह जर्जर हो गए थे। इसलिए विधिपूर्वक नए दारू (काष्ठ) लाकर नई प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा की गई थी।

केशरी, गंग और सूर्य वंशों के राज्यकाल में ओड़िया जाति के आराध्य देव श्रीजगन्नाथ शांति से पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहे। ओड़िशा के अंतिम स्वतंत्र राजा मुकुन्द देव गजपति के राज्यकाल तक अच्छे दिन रहे। 1568 में मुकुन्द देव की मृत्यु के बाद उनके दुर्बल उत्तराधिकारी के राज्यकाल में ओड़िशा में राजनैतिक अस्थिरता आ गई। ओड़िया जाति के घोर दुर्दिन आए। बंगाल के नवाब के सेनापति कालापहाड़ ने ओड़िशा पर आक्रमण किया और अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को नष्ट कर दिया। भुवनेश्वर में अपनी विध्वंशलीला के बाद कालापहाड़ पुरी की ओर बढ़ा। इस बार भी महाप्रभु के सेवकों ने तत्परता के साथ देव-प्रतिमाओं को

चिल्का क्षेत्र के पारीकुद में गुप्त रूप से स्थापित किया। कालापहाड़ पुरी में विध्वंस मचाने के बाद जगन्नाथ की तलाश में यथास्थान पर पहुँच गया। मादला पांजी के अनुसार, ''चिल्का के मुहाने को पार कर समुद्र में कमर तक पानी में प्रवेश कर जगन्नाथ जी के विग्रह को निकाला और हाथी पर लाद कर उसे ले गया। गंगा के किनारे ले जाकर उसने विग्रह को आग में डाल दिया। किंतु ऐसा करने से अचानक उसका शरीर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। तब काजी ने बताया कि ओड़िया जाति के देवता को आग में झोंकने का प्रयास करने के कारण कालापहाड़ का शरीर फट गया। यह सुनकर कालापहाड़ के बेटे ने जगन्नाथ विग्रह को और कुछ न कर तुरंत गंगा में प्रवाहित कर दिया। जगन्नाथ जी को जब कालापहाड़ ले जा रहा था, तो जगन्नाथ जी का भक्त विशर महांति उसके पीछे लग गया, उसने अनशन कर उससे विग्रह की मांग की। उसने जगन्नाथ जी के विग्रह से ब्रह्म को निकाल कर मृदंग में छिपा लिया और लाकर कुजंगगढ़ चला आया। कुजंग राजा ने नवकलेवर कराकर जगन्नाथ जी को पुनः प्रतिष्ठित कराया।''

ओड़िशा में जब भोई वंश की स्थापना हुई। इस वंश के संस्थापक रमाई राउतरा उर्फ रामचन्द्र देव माने जाते हैं। ये ओड़िशा के स्वतंत्र गजपति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। राजा ने जगन्नाथ जी को पुनर्प्रतिष्ठित किया। ''चकड़ा पोथी'' के अनुसार, ''रात में राजा को भगवान ने स्वप्न में निर्देश दिया कि वे कुजंगगढ़ में विराजमान हैं। उस शाखा की दारू से नई मूर्ति राजा गढ़े। बालि नृसिंह से उन्हें लाकर श्रीमन्दिर के रत्नसिंहासन पर विराजमान कराए।'' अगले दिन राजा ने सभासदों, पुजारियों, सामंतों और कारीगरों को बुलाकर स्वप्न की बात बताई। राजा ने बड़े पद्मनाभ पटनायक को आज्ञा दी। वे कुजंग से महाप्रभु को ले आए। राजा ने नए विग्रह का निर्माण किया। उनमें ब्रह्म को स्थापित किया।

मादला पांजि के अनुसार– नवें वर्ष में राजा ने कुजंग गढ़ से ब्रह्म मंगवाया। खुरुधा में वन यज्ञ किया और श्रीमूर्तियों का निर्माण किया।

11वें वर्ष में कर्क राशि के सूर्य के 18वें दिन श्रावण शुक्ल नवमी के दिन श्री पुरुषोत्तम को बड़े मन्दिर में रत्न सिंहासन पर विराजमान किया। ब्रह्म लाने वाले शवर महान्ति को नायक बनाया। सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी, भट्टमिश्रों ने महाप्रसाद सेवन किया और श्री रामचन्द्र देव को द्वितीय इन्द्रद्युम्न की उपाधि दी। इसके साथ ही कुछ वर्षों से बन्द रथयात्रा का फिर से प्रचलन शुरू हुआ।

रामचन्द्र देव के बाद उनके पुत्र पुरुषोत्तम देव राजा बने। इस बीच मुगल शासक अकबर की मृत्यु हो गई। अब एक बार फिर उत्कल पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। लुटेरे और धर्मान्ध मुगल सरदारों के आक्रमण से रक्षा के लिए श्रीजगन्नाथ जी को बार-बार श्रीक्षेत्र से निकाल कर राज्य के दुर्गम क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया गया। राज्य की संपत्ति तथा मान सम्मान सबसे बढ़कर भगवान को मानकर ओड़िशा के राजा तथा यहाँ की प्रजा जगन्नाथ जी की रक्षा में लग गई।

पहली बार 1609 में जब कटक के सुबेदार मकरम खाँ ने पुरी पर आक्रमण किया, तब श्री जगन्नाथ जी को पुरी से आठ किलोमीटर दूर कपिलेश्वर में श्रीजगन्नाथ जी को छुपाकर रखा गया। यहीं पर भगवान की डोलयात्रा और बाहुड़ा यात्रा संपन्न हुई। 1610 में केशुदास नामक एक ओर मुगल सूबेदार ने रथयात्रा के वक्त पुरी पर फिर से आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारियों ने देवताओं के तीनों रथों को जला दिया। मादला पांजि के अनुसार परमेश्वर को पालकियों में कन्धों पर उठाकर श्री मन्दिर में विराजमान करवाना पड़ा। 1615 में राजा टोडरमल के पुत्र कल्याण मल जब ओड़िशा के सूबेदार बने तब उन्होंने खोरधा पर आक्रमण किया था। इस समय सेवकों ने श्रीमन्दिर पर आक्रमण की आशंका से श्री जगन्नाथ जी को चिल्का के किनारे महीसानासी पर्वत पर रखा। 1617 में मकरम खाँ ने खोरधा पर कब्जा कर पुरी पर आक्रमण किया। इस विपत्ति के वक्त श्रीजगन्नाथ जी को बाणपुर की सीमा पर गजपदा में लेकर नदी में नाव पर विराजमान किया गया। दो वर्ष बाद मकरम खाँ के वापस जाने

पर श्रीजगन्नाथ को लेकर फिर से पुरी में प्रतिष्ठित किया गया। 1622 में भोई वंश के श्री नरसिंह देव के राज्यकाल में सूबेदार अहमद बेग ने खोरधा पर आक्रमण किया। इस समय राजा नरसिंहदेव ने अपने परिवार और श्री जगन्नाथ जी को रणपुर के माणित्री दुर्ग में स्थानांतरित कर दिया। इसके बाद तत्कालीन सम्राट के पुत्र विद्रोही खुर्रम के हिन्दू सेनापति भीम सिंह ने जगन्नाथ जी के उद्धार के लिए नरसिंह देव की सहायता की। फिर खुर्रम के बंगाल से भागकर ओड़िशा में शरण लेने पर श्रीजगन्नाथ पर फिर विपत्ति आ गई। उससे रक्षा के लिए राजा नरसिंह देव ने साक्षीगोपाल मन्दिर में श्रीजगन्नाथ को रखा। खुर्रम के ओड़िशा से विदा लेने के बाद मुगलों की काली साया टली। श्रीक्षेत्र से जगन्नाथ के प्रस्थान और प्रत्यावर्त्तन के प्रत्येक अवसर पर अन्न महाप्रसाद का पुनः प्रवर्त्तन हुआ था। इसके साथ ही श्रीविग्रहों का दारू-परिवर्तन और नवकलेवर विधि का पालन किया गया।

दिल्ली के सम्राट औरंगजेब के काल में उपर्युक्त विपत्ति चरम सीमा पर थी। 1693 में दिव्यसिंह देव खोरधा के राजा थे। 1698 में नायब नवाब एकराम खाँ ने श्रीजगन्नाथ मन्दिर पर आक्रमण किया। इतिहासकार कृपासिन्धु मिश्र के मतानुसार पण्डों ने श्री जगन्नाथ के विग्रहों से दारू ब्रह्म को निकाल कर विमला मन्दिर के पिछवाड़े कहीं छुपा दिया। एकराम खाँ ने श्रीजगन्नाथ के विग्रहों को नष्ट कर दिया और मन्दिर में काफी लूटपाट की। इधर दिव्यसिंहदेव एकराम खाँ के भय से छुप गए।

मुगलों का सामना करना ओड़िशा के राजपरिवार के लिए आसान नहीं था। इसलिए राजा ने इस अपमान को सह लिया, किंतु अपने कौशल से श्रीजगन्नाथजी और श्रीमन्दिर को ध्वंस से बचा लिया। मादला पांजि के अनुसार इन दिनों भोग के वक्त घण्टी आदि नहीं बजती थी, रथयात्रा की परम्परा भोगमण्डप के अन्दर ही निभाई जाती थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिव्यसिंहदेव ने अठरगढ़ के राजाओं को

एकत्र कर ओड़िशा से मुगल सेना को भगा दिया। श्रीजगन्नाथ और श्रीक्षेत्र के पुनरुद्धार की व्यवस्था की।

1731 में फिर श्रीजगन्नाथ पर विदेशी आक्रमण हुआ। उस समय गजपति द्वितीय रामचन्द्र खोरधा के राजा थे। इनके शासनकाल में ओड़िशा की आन्तरिक-कलह का मौका पाकर मुगल सूबेदार तकि खाँ ने खोरधा पर आक्रमण किया। राजा रामचद्र नजरबन्द कर लिए गए। इस नाजुक समय में श्रीमन्दिर पर मुगलों के उपद्रव की आशंका छाई रही। इसलिए उनको गुप्त रूप से बाणपुर की नदी के हरीश्वर मंडप में लाया गया। पुरी से जगन्नाथ जी के प्रस्थान की सूचना पाकर तकि खाँ ने 1733 में फिर खोरधा पर आक्रमण कर दिया। इस बार राजा ने श्रीजगन्नाथ को बाणपुर से हटाकर खलिकोट की सीमा पर टिकालि में रखा। उन्होंने स्वयं बोलगढ़ में जाकर शरण ली। तकि खाँ रामचन्द्र के पुत्र भागीरथ कुमार को खोरधा की गद्दी पर बैठाकर मुर्शिदाबाद लौट गया। इसी बीच रामचन्द्र देव ने पुनः खोरधा पर अधिकार कर श्रीजगन्नाथ जी को वापस लाकर पुरी में पुनर्प्रतिष्ठित किया। इस वर्ष दो आषाढ़ मास पड़े थे। इसलिए श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर संपन्न हुआ।

श्रीजगन्नाथ की रथयात्रा का समाचार सुनकर कटक के मुगल सूबेदार दशरथ खाँ ने क्रोधित होकर फिर खोरधा पर आक्रमण कर दिया। इस बार रामचन्द्र देव ने तीनों श्रीविग्रहों को आठरगढ़ के मेरेदा ग्राम में स्थानांतरित कर दिया। वहाँ के लोगों ने दो महीने तक अथक परिश्रम करके वहाँ श्रीजगन्नाथ का एक मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में आज भी प्रमाणस्वरूप तीनों विग्रहों की पूजा होती है।

रामचन्द्र देव के बाद उनके पोते श्री वीरकिशोर देव खोरधा के राजा बने। इनके राज्यकाल में ओड़िशा मराठों के अधीन था। वीरकिशोर देव मराठों से सहायता प्राप्त कर मराठा शासकों का प्रियपात्र बन गए। इस बदली परिस्थिति में राज्यसेवक वीरकिशोर देव और धर्मनिष्ठ हिन्दू मराठा शासकों के समय में श्रीमन्दिर की स्थिति शान्तिपूर्ण रही। इसके

साथ ही लगभग 200 वर्षों की मुगल यातनाएँ समाप्त हो गईं।

जब-जब ओड़िशा में अन्तर्विवाद हुआ, उन दुर्दिनों में इस जाति के हृदयपिंड स्वरूप श्रीजगन्नाथ दारूब्रह्म बाहरी शत्रुओं के आक्रमण के शिकार हुए। ओड़िया जाति की शान्ति और सुरक्षा खतरे में पड़ने के साथ इष्टदेव तथा राष्ट्रीय देवता श्रीजगन्नाथ का अस्तित्व भी खतरे में पड़ा। युगों से श्रीजगन्नाथ इस जाति की आत्मा स्वरूप रहे, इस जाति के उत्थान-पतन से प्रभावित रहे।

इस प्रकार महाप्रभु के नव-कलेवर की परम्परा अपने उत्थान-पतन के पथरीले रास्ते को पार करती हुई अपनी पतितपावनी भक्ति की मन्दाकिनी में आ मिली है।

नवधा भक्ति– श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन।

(ख) नव कलेवर : 1996

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्यंति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यान्यानि संगाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को छोड़कर मनुष्य नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रभु जगन्नाथ अपने पुराने कलेवर को छोड़कर नए कलेवर धारण करते हैं, जिसे नव कलेवर कहा जाता है।

नव कलेवर का संबंध महाप्रभु की रथ-यात्रा के साथ जुड़ा हुआ है। यद्यपि यह रथ-यात्रा की तरह प्रतिवर्ष नहीं होता, फिर भी ऐसी मान्यता है कि जिस वर्ष दो आषाढ़ लगते हैं उसी वर्ष महाप्रभु का नव कलेवर होता है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रत्येक 12 वर्षों के अंतराल में नव कलेवर होता है। लेकिन ऐसा भी कभी-कभी संभव नहीं होता। जैसे 1977 के बाद वर्ष 1996 में नव कलेवर हुआ था।

वैसे तो प्रतिवर्ष तीनों विग्रहों (बलभद्रजी, सुभद्राजी और जगन्नाथजी) को अणसर के समय रत्नदेवी से उठाकर लाया जाता है और श्रृंगार पीढ़ा की विधि–पूरी की जाती है। इन्हें चंदन का सात तह लेप लगाया जाता है। 108 घड़े चंदन मिश्रित जल से स्नान कराया जाता है और तब नये वस्त्र आदि पहनाये जाते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सात तह में मात्र छह तह तक ही स्नान कराया जाता है लेकिन नव कलेवर के समय पूरी तरह से दारू विग्रहों को ही बदल दिया जाता है और जो नये विग्रह तैयार होते हैं। वे 'दारू' अर्थात् नीम के होते हैं।

नव कलेवर की विधि बड़ी ही रोचक होती है और यही कारण है कि 1996 में नव कलेवर रथ–यात्रा देखने करीब 15 लाख लोग पुरी आए थे।

1996 के नव कलेवर विधि के तहत 29 मार्च, 1996 से ही वन यज्ञ शुरू हुआ था। अलग–अलग स्थानों से दारू लाए गए थे। पहली जून से विग्रह निर्माण शुरू हुआ था।

मान्य परंपरा के अनुसार श्रीमंदिर का खुरी नाइक (भविष्य वक्ता) सबसे पहले बतलाता है कि किस वर्ष दो आषाढ़ पड़ेंगे। उसके बाद पुरी के राजा विभिन्न मठों के प्रतिनिधियों एवं मुख्य सेवकों से विचार–विमर्श करके पवित्र दारू खंभ की खोज हेतु तिथि निर्धारित करते हैं। नव कलेवर वाले वर्ष अणसर की अवधि 15 दिन की जगह एक महीने 15 दिन तक बढ़ा दी जाती है। चैत महीने के शुक्ल पक्ष के 10वें दिन दोपहर के बाद पूजा होती है जिसमें पूजा के बाद पति महापात्र या शबर पुजारी तीन ''आज्ञामाल'' लेते हैं, जो लाल रंग के धागे में गुंथा होता है, जिसके मध्य भाग में गांठ के रूप में निरमाल्या बंधा होता जिसके द्वारा पता चलता है कि किस विग्रह के साथ कौन–सी पूजा विधि अपनायी जाएगी। जब पतिमहापात्र तीन मालाओं को दईतागण कर देता है, तब सुदर्शन की आज्ञामाल को अपने लिख रख लेता है, तब भीतर छू महापात्र अपने हाथ से पति महापात्र के सिर पर एक लाल पाट बांधता है। दइतागण के सिर पर जो लाल पाट बांधा जाता है उसकी लंबाई चार फीट होती है जबकि

पति महापात्र के सिर पर बांधे जाने वाला पाट बड़ा होता है।

1996 में इस विधि के संपन्न होने के उपरान्त एक छोटा जुलूस पुरी के राजा के पास गया। वहां राजा ने उनकी मंगल यात्रा हेतु पान और सुपारी दी और उनके लक्ष्य में सफल होने की मंगल कामना की।

वह दल जिसमें दइतागण, पुजारी और विश्वकर्मा (बढ़ई) आदि थे, उस रात जगन्नाथ वल्लभ मठ में विश्राम किए और दूसरे दिन सुबह अपने वन यज्ञ के लिए प्रस्थान किए। रास्ते में वे सबसे पहले पुरी से लगभग 80 किलोमीटर दूर उत्तरीपूर्वी दिशा में स्थित काकटपुर आए, जहाँ मंगलादेवी का मंदिर है। उन्होंने मंगलादेवी से मार्गदर्शन लिया। उनके साथ यज्ञ आदि की सामग्री से लदी हुई एक गाड़ी थी।

कहा जाता है कि एक समय में काकटपुर नीम के पेड़ों से भरा जंगल था। सच पूछा जाय तो आज भी पर्याप्त मात्रा में काकटपुर में नीम के पेड़ हैं। हजारों वर्ष पूर्व इसी काकटपुर से नीम काष्ठ लेकर एक समय में नवकलेवर हुआ था। उसी समय से मंगलादेवी की पूजाकर, वनयज्ञ की आशीष लेकर दल आगे बढ़ता है।

उसके बाद दल देउली मठ गया जो वहाँ से कुछ ही दूरी पर पवित्र नदी प्राची के तट पर अवस्थित है। वहाँ से पूजा व्रत किए और रात में देवी मंगला ने उनसे प्रसन्न होकर उन्हें बताया कि किस दिशा में किस देव–देवी हेतु पवित्र नीम काष्ठ मिलेगा। देवी मंगला के मार्गदर्शन के अनुसार ही सुबह उठकर उन दिशाओं में दल निकल पड़ा।

कहा जाता है कि देवी मंगला की प्रेरणा से चार अलग–अलग नीम वृक्ष चार अलग–अलग दिशाओं में उपलब्ध हुए जिसकी जानकारी दइतागण ने दी। सन् 1930 ई. में नवकलेवर के समय प्रभु जगन्नाथ का पवित्र नीम काष्ठकटक जिले के जगतसिंहपुर थाना अंतर्गत रबदीधरकनपुर गाँव में मिला था। कहा जाता है कि पवित्र नीम का पेड़ दो नदियों कुशभद्रा और देवी नदी के बीच स्थित टापू में था। उस वृक्ष पर पद्म, शंख, गदा और चक्र के चिन्ह थे। कहा जाता है कि उस वृक्ष की जड़ में एक काला नाग

था। बलभद्रजी का पवित्र नीम काष्ठ, उस समय पुरी जिले के बाली पटना थाना अंतर्गत वनमालीपुर गाँव में पाया गया था। उस पेड़ की सात शाखाएँ थीं। यह भी कहा जाता है कि उस नीम पेड़ से 2 हाथ की दूरी पर एक सर्प था, जो उस नीम पेड़ की जड़ को जकड़े हुए था। सुभद्राजी का पवित्र नीम काष्ठ पुरी जिले के नीमापड़ा थाना अंतर्गत बड़ारन गाँव में पाया गया था। इस पेड़ की पाँच शाखाएँ थीं और पेड़ पर चक्र आदि के चिन्ह थे और साँप था।

1996 में जैसे ही पवित्र नीम पेड़ों का पता लगा लिया गया, उन पर आज्ञामाल चढ़ा दी गई। उसके बाद एक शबरपल्ली उस पेड़ के चारों ओर बनाई गई। फिर उस पवित्र नीम पेड़ से नीचे यज्ञ शुरू हुआ। हजारों लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्त–गणों ने वहाँ पहुँचकर उस दारू ब्रह्म के दर्शन किए। यज्ञ की समाप्ति के उपरांत सबसे पहले दइतापति ने उस पवित्र नीम पेड़ पर पूर्व विराजमान देव–देवियों से आग्रह किया कि वे उसे पवित्र कार्य हेतु छोड़कर अन्यत्र चले जाएँ और तब चांदी की कुल्हाड़ी से उस पवित्र नीम पेड़ को काटा। उसके बाद विश्वकर्मा (बढ़ई) ने लोहे की कुल्हाड़ी से काटा। दारू खंभ को चार गाड़ियों में लादकर पुरी लाया गया, शेष पेड़ के हिस्सों को (पत्ते आदि) वहीं जमीन के नीचे गाड़ दिया गया। श्रद्धालु भक्तों की भीड़ पूजा–अर्चना, कीर्तन एवं संकीर्तन आदि करती हुई खुशी–खुशी गाड़ी को खींचकर पुरी तक लाई।

सबसे पहले सुदर्शनजी का पवित्र दारू खंभ लाया गया, उसके बाद बलभद्रजी का, उसके बाद सुभद्राजी का और अंत में श्रीजगन्नाथजी का। जब दल पुरी पहुँचा, तब वह सबसे पहले नृसिंह मंदिर के पास रुका जो गुण्डिचा मंदिर के पास है और तब पुरी नरेश को खबर दी गई कि पवित्र दारू ला दिया गया है। जैसे ही राजा को यह शुभ संदेश मिला, वैसे ही सेवायतों का एक रंगा–रंग जुलूस लेकर वे पहुँचे और उस पवित्र दारू खंभ को खींचकर श्रीमंदिर के उत्तरी द्वार से भीतर लाए और कोइली बैकुंठ नामक जगह पर रखे। स्नान यात्रा के पश्चात् कोइली बैकुंठ से

पवित्र दारू खंभ को विश्वकर्मा मंडप में विग्रह तैयार करने हेतु लाया गया। आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष के 14वें दिन विग्रह को तैयार कर दिया गया और उसी दिन उन्हें शाम से लेकर दूसरे दिन दोपहर तक पूरी तरह से रंगकर सुसज्जित कर दिया गया। चारों तरफ से श्रीमंदिर के दरवाजे बंद कर दिए गए। चार दयिता महापात्र अथवा पुजारी ने ब्रह्म–पिंड को नवीन विग्रह में प्रतिष्ठित कर दिया। ऐसा भी कहा जाता है कि जो दइता ब्रह्म पिंड को प्रतिष्ठित करता है वह कभी उस दृश्य को देख नहीं सकता है। कुछ लोग मानते हैं कि वह ब्रह्म पिंड शालिग्राम पत्थर होता है। नव कलेवर के दौरान पाया गया कि जो पुजारी वह पवित्र कार्य करता है, वह शीघ्र ही स्वर्ग सिधारता है, पर यह बात गलत है।

ब्रह्म–पिंड की स्थापना के बाद विग्रहों की 16 उपचार विधि से पूजा की गई और तब पुराने विग्रहों को दइतागण उठाकर कोइली बैकुंठ में लाए, जहाँ उनके द्वारा उन पुराने विग्रहों को जला दिया गया। यहाँ एक रोचक परंपरा है, जिस प्रकार हिंदू धर्म में दाह संस्कार के बाद व्यक्ति को जो औपचारिकताएँ पूरी करनी होती हैं, वे सारी औपचारिकताएँ विग्रह को दाह संस्कार के बाद दइतागण ने भी कीं।

नव कलेवर का त्यौहार न केवल प्रभु जगन्नाथ की सांसारिक परंपराओं को सत्य सिद्ध करता है बल्कि शरीर और आत्मा, आत्मा और जीव के यथार्थ संबंधों को भी स्पष्ट करता है।

1996 में सुदर्शन का दारु कटक जिले के पानीमल गाँव से, सुभद्राजी का समुद्र के किनारे अस्तरंग के पास मालदा गाँव से, बलभद्रजी का कटक से 40 किलोमीटर दूर सालेपुर के पास रामचंद्रपुर से और जगन्नाथजी का खोरधा शहर से 8 किलोमीटर दूर दधीमाच्छगाड़िया गाँव से लाया गया था। वनयज्ञ का नेतृत्व किया था विद्यापति ने और इनके साथ कुल सौ सेवक गए थे। 1996 की रथयात्रा 17 जुलाई को थी, जिसमें 15 लाख श्रद्धालु भक्त पुरी पधारे थे।

महाप्रभु जगन्नाथ की अपने भक्तों पर कृपा

जयदेव पर महाप्रभु की कृपा

जयदेव से जुड़ी हुई अनेक कथाएँ हैं। इनमें एक है– जयदेव कहीं दूर रात में एक गीत रच रहे थे और गा भी रहे थे। वहीं पास में एक धोबिन कपड़े धो रही थी। वह उनके मधुर गीत सुनकर नाचने लगी। इस पावन छटा को देखने के लिए प्रभु जगन्नाथ मंदिर छोड़कर चले आए और धोबिन के साथ-साथ नाचने लगे। धोबिन की नृत्य-कला की गहराइयों में डूबे जगन्नाथजी के कीमती वस्त्र कांट-कूश में फँसकर तार-तार हो गए। सुबह श्रीमंदिर में देखा गया कि जगन्नाथजी के वस्त्र फटे हैं। जब उसे बदलने की तैयारी हुई तो एक दिव्यवाणी सुनाई दी कि कल रात वाली धोबिन को लाओ। उसे कीमती वस्त्र आदि दो, फिर मेरे वस्त्र बदलो। धोबिन को बुलाया गया, कीमती वस्त्र आदि दिए गए और तभी से जयदेव भी अपनी रचना श्रीमंदिर में करने लगे और प्रभु जगन्नाथ को सुनाने लगे।

दूसरी कहानी और रोचक है। जयदेव अपनी अष्टपदी लिख रहे थे–

प्रिय चारु शीले मुंज मान मनिदानम्
स्मर गरल खंडनं पत्र शिरसि मंडनम्।

इतना तक लिख चुके थे। आगे क्या लिखें, सोच नहीं पा रहे थे। उनकी कलम रुक गई। बेचैन से हो गए। पंक्ति अधूरी लिखी छोड़ कर कहीं चले गए। जयदेव के वेश में जगन्नाथजी आए। पद्मावती से कहा– जल्दी भोजन लाओ, भूख लगी है। भोजन किया। शयन कक्ष में गए और जयदेव की अष्टपदी की तीसरी पंक्ति लिख दी– **''देहि मे पद पल्लव मुदारम्।''** अर्थात् सिर पर अपने चरण-पल्लव रखो।

जयदेव कुछ देर बाद अए। फिर से नहा-धोकर अपनी पत्नी पद्मावती से कहा– ''थाल लगाओ, भूख लगी है।'' पद्मावती ने कहा– ''क्या पागल हो गए हो, अभी-अभी खाए थे, तुम्हें क्या इतनी जल्दी भूख लग गई?'' जयदेव पागलों की तरह अपने शयन कक्ष में घुसे। देखा कि अष्टपदी की तीसरी पंक्ति लिखी हुई है और शयन-कक्ष सुगंध से महक रहा था। पद्मावती के पास आए और कहने लगे कि तुम बड़ी भाग्यवती हो। प्रभु जगन्नाथ ने तुम्हारे हाथों का पकाया भोजन किया। पद्मावती ने तुरंत कहा– ''स्वामी! जगन्नाथजी तो आपकी रचना में समा गए हैं। तुम्हारी रचना तो अब भवदीय रचना हो गई। अब कहिए कि मैं भाग्यवती हूँ या आप भाग्यवान?''

1. देवर्षि नारद पर महाप्रभु की कृपा

कहानी महाप्रभु के एक रूप श्रीकृष्ण की है। द्वापर युग में एक बार द्वारका में श्रीकृष्ण की पटरानियों ने माता रोहिणी से कृष्ण की ब्रजलीला एवं गोपियों के प्रेम प्रसंग को सुनाने का आग्रह किया। पहले तो माता रोहिणी ने टालने का बहुत प्रयास किया, लेकिन पटरानियों के बहुत आग्रह करने पर उन्हें गोपियों के प्रेम प्रसंग को सुनाना ही पड़ा। सुभद्राजी की उपस्थिति वहाँ उचित न जानकर माता रोहिणी ने उन्हें द्वार के बाहर

खड़े रहने को कहा और यह भी आदेश दिया कि वे किसी को अन्दर न आने दें। उन्होंने गोपियों के प्रेम प्रसंग वाली कथा शुरू की। ठीक उसी समय श्रीकृष्ण और बड़े भाई बलराम आ पहुँचे। सुभद्राजी ने दोनों भाइयों के बीच में खड़ी होकर माता रोहिणी के आदेशानुसार उन्हें भीतर जाने से रोक दिया। उसी समय देवर्षि नारद नारायण–नारायण करते हुए वहाँ आ गए। देवर्षि ने जो यह प्रेम द्रवित रूप तीनों का देखा तो श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि आप तीनों इसी रूप में कलियुग में विराजें। श्रीकृष्ण ने महर्षि नारद की प्रार्थना स्वीकार की और कलियुग में दारू विग्रह रूप में इसी रूप में पुरी में प्रकट होने का वरदान दिया। कालान्तर में ये ही महाप्रभु जगन्नाथ जगन्नाथपुरी में अपने बड़े भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा के साथ प्रकट हुए।

2. इन्द्रद्युम्न पर महाप्रभु की कृपा

इन्द्रद्युम्न मालवा के राजा थे। वे स्वभाव से विष्णु–भक्त थे। एक बार स्वप्न में उन्हें ऐसा आभास हुआ कि भगवान विष्णु सबसे अच्छे रूप में उत्कल में मिलेंगे। सुबह होने की देर थी, विद्यापति नामक एक ब्राह्मण को उसका पता लगाने के लिए शीघ्र उत्कल भेज दिया।

विद्यापति उत्कल आये। काफी छानबीन के बाद उन्हें पता चला कि भगवान विष्णु यहाँ नीलमाधव के रूप में पूजे जाते हैं। उन्होंने यह भी पता लगाया कि नीलमाधव विश्ववसु शबर के यहाँ गृहदेवता के रूप में पूजे जाते हैं। वे विश्ववसु को ढूँढते हुए उसके पास गए और नीलमाधव के विषय में जानना चाहा। लेकिन विश्ववसु ने नीलमाधव के विषय में कुछ भी बताने से मना कर दिया।

विद्यापति ने नीलमाधव के विषय में जानने के लिए बहुत हाथ–पाँव मारे लेकिन जब कोई रास्ता नजर नहीं आया तो अंत में विश्ववसु की सुंदर कन्या ललिता से विवाह करने का उन्होंने प्रस्ताव रखा। विद्यापति का विवाह ललिता के साथ हो गया। दोनों पति–पत्नी अब एक साथ रहने लगे।

एक दिन विद्यापति ने अपनी पत्नी ललिता से कहा कि वह अपने पिता

से कहे कि वे उन्हें नीलमाधव के विषय में बताएँ। अगर ललिता ऐसा नहीं करेगी तो वे उसे छोड़कर चले जाएंगे। लाचार ललिता ने अपने सुहाग की भीख माँगते हुए अपने पिता से आग्रह किया कि वे विद्यापति को नीलमाधव के विषय में बता दें। विश्ववसु ने एक शर्त पर नीलमाधव के विषय में बताने पर सहमति जताई कि जहाँ उनके दर्शन होंगे वहाँ तक विद्यापति अपनी आँखें बंद रखेंगे और उनके दर्शन के तुरंत बाद उसकी आँखों पर पट्टी बांध दी जाएगी जिससे कि वे पुन: वह मार्ग न देख सकें।

रात हुई ललिता ने विद्यापति को नीलमाधव की जानकारी वाली शर्त बताई। फिर विचार किया कि सुबह जब विद्यापति की आँखों पर पट्टी बांधी जाएगी तो पट्टी के दोनों छोरों पर वह सरसों बाँध देगी। वह गिरती जाएगी और जिससे कि कुछ दिनों बाद जब सरसों पौधे का रूप धारण करेगी तो पता चल जाएगा कि नीलमाधव तक पहुँचने का रास्ता किधर है।

अगले दिन सुबह हुई। विद्यापति की आँखों पर ललिता ने उसी प्रकार पट्टी बाँध दी, जैसा कि उसने रात में विचार किया था। विश्ववसु विद्यापति को लेकर नीलमाधव के पास पहुँचा। विद्यापति की आँखों की पट्टी जैसे ही खुली उन्होंने नीलमाधव के दर्शन किए और देखा कि उस वट वृक्ष से एक कौआ नीचे गिरा, मर गया लेकिन शीघ्र ही स्वर्ग चला गया। उन्होंने भी वहाँ प्राण त्याग करना उचित समझा, तभी उन्हें एक दिव्यवाणी सुनाई दी–''अरे मूर्ख ब्राह्मण! यह क्या कर रहे हो? तुम्हें तो नीलमाधव की जानकारी राजा इंद्रद्युम्न को देनी है?''

विद्यापति राजा इंद्रद्युम्न के पास लौट आए और नीलमाधव के विषय में उन्हें बताया। शीघ्र ही राजा इन्द्रद्युम्न ओड़िशा यात्रा के लिए निकल पड़े। जैसे ही वे उस पावन स्थल पर पहुँचे। नीलमाधव अंतर्ध्यान हो चुके थे। वे निराश हो गए लेकिन तुरंत एक दिव्यवाणी उन्हें सुनाई दी–

''निराश मत होओ इंद्रद्युम्न! जाओ, देखो, समुद्र में एक दारु लट्ठा तुम्हें तैरता मिलेगा। उसे लाकर तुम जगन्नाथजी, सुभद्राजी और बलभद्रजी की मूर्तियाँ गढ़ो।''

कहा जाता है कि इन्द्रद्युम्न ने ऐसा ही किया। आज भी श्रद्धालु भक्त समुदाय इसे इन्द्रद्युम्न पर जगन्नाथजी की कृपा ही मानता है।

दूसरी कहानी और भी रोचक है। इन्द्रद्युम्न की पत्नी का नाम गुण्डीचा था। उसी के नाम पर पुरी में इन्द्रद्युम्न ने एक महल बनवाया और उसका नाम रखा गुण्डीचाघर। समुद्र के किनारे तैरते हुए दारू को गुण्डीचा लाया गया। राजा दिन-रात परेशान रहने लगे कि कैसे मूर्तियाँ तैयार की जाएँ। सब को निमंत्रण दिया कि जो कोई भी मूर्तियाँ गढ़ सकता है, आए और उस पवित्र नीम काष्ठ से मूर्तियाँ गढ़े। एक-एक करके अनेक बढ़ई आए और उल्टे पाँव लौट गए क्योंकि जो कोई उस लकड़ी पर अपनी कुल्हाड़ी चलाता था, वह कुल्हाड़ी अपने-आप टुकड़े-टुकड़े हो जाती थी। राजा की चिंता और बढ़ गई। दिन-रात, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते उसे एक ही चिंता घेरे रहती थी कि कैसे दारू ब्रह्म का निर्माण हो।

एक दिन विश्वकर्मा एक वृद्ध बढ़ई के रूप में वहाँ आए और स्वेच्छा से दारू ब्रह्म के निर्माण की इच्छा व्यक्त की, लेकिन तीन शर्त रखीं:

1. मूर्तियों के आकार, प्रकार वे स्वयं सुनिश्चित करेंगे।
2. मूर्तियों के निर्माण हेतु एक अलग घर उन्हें दिया जाये, जिसको वे भीतर से बंद करके निर्माण कार्य करेंगे।
3. उन्हें इस काम के लिए कम से कम 21 दिनों का समय दिया जाए।

राजा ने तीनों शर्तें मान लीं। महादेवी बना दारू को रखकर और अंदर से कमरा बंद कर बढ़ई ने मूर्तियाँ बनाने का काम शुरू कर दिया। राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी गुण्डीचा जिज्ञासावश उस दरवाजे से कान लगाकर चुपके से अंदर की 'खुट-खुट' की आवाज सुनती थी। एक रात उसने सोचा कि बेचारा बढ़ई बिना अन्न-जल के कमरे के भीतर अपने को बंद करके काम करता है, क्या उसे भूख नहीं लगती? 15वें दिन उसने राजा को अपने मन की शंका वाली बात बतायी। राजा ने सोचा रानी ठीक कहती है। दरवाजे से कान लगाकर सुना, तो कोई आवाज नहीं आ रही थी। रानी को बुलाया। रानी ने भी कोई आवाज नहीं सुनी। अब राजा-रानी

दोनों का शक यकीन में बदल गया। अगले दिन जब दरवाजा खोला तो वहाँ बढ़ई नहीं था और तीनों ही विग्रह के मात्र शीर्ष भाग ही बने हुए थे। राजा ने सोचा कि जो बना है, ठीक ही बना है।

अब विग्रहों के लिए मंदिर का निर्माण होना चाहिए। राजा ने एक विशाल मंदिर बनवाया और यज्ञ की तैयारी शुरू कर दी। यज्ञ में ब्राह्मणों को दान देने के लिए प्रतिदिन उसने दस हजार गायों को एकत्रित किया। कहा जाता है कि इतनी अधिक गायें हो गईं कि उनके खुर से एक विशाल गड्ढा हो गया और अंदर से स्वच्छ और निर्मल जल अपने-आप फूट पड़ा, जो उस समय पक्षियों एवं पशुओं के विहार का डेरा बन गया था। आज भी वह जलाशय है, जिसे इन्द्रद्युम्न तालाब के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार विग्रह और मंदिर दोनों तैयार हो गए। उसी समय वहाँ नारद जी आ गए। राजा इन्द्रद्युम्न ने विग्रह निर्माण और मंदिर निर्माण की पूरी कहानी नारदजी को बताई। नारदजी ने राजा से आग्रह किया कि वे उनके साथ इंद्रलोक जाएँ और ब्रह्माजी से निवेदन करें कि वे मृत्युलोक चलकर विग्रह में प्राण प्रतिष्ठा करें। राजा इन्द्रद्युम्न ने नारदजी की बात मानकर इंद्रलोक के लिए प्रस्थान किया। वहाँ जब दोनों पहुँचे तो ब्रह्माजी पूजा कर रहे थे। वहाँ इंद्रलोक में एक घंटे तक ब्रह्माजी का, वे लोग इंतजार करते रहे, लेकिन तब तक यहाँ मृत्युलोक में हजार वर्ष पूरे हो गए। राजा इन्द्रद्युम्न की कई पीढ़ी गुजर गई। धरती की पूरी सभ्यताएँ बदल गईं। राजा इन्द्रद्युम्न और उनके मंदिर को भूल गए।

तीसरी कहानी है। इन्द्रद्युम्न नारद के साथ ब्रह्माजी को लेकर जब आए तो देखते हैं कि सब कुछ बदल गया है। वहाँ पहले जैसा कुछ भी नहीं था। न उनका मंदिर था, न ही गुण्डीचा, न ही उनके सगे-संबंधी, सभी मौत के गाल में पहुँच चुके थे। कारण यह था कि हजारों साल गुजर चुके थे। उस समय उत्कल का राजा माधव था। वह एक दिन अपने घोड़े पर सवार होकर जा रहा था। अचानक उसका घोड़ा ठोकर खाकर गिर पड़ा। पता लगाया तो आवाज के नीचे इन्द्रद्युम्न का बनवाया हुआ मंदिर मिला।

जब नारद और इन्द्रद्युम्न लौटे उस समय वहाँ मंदिर में माधव राजा अपने देवता की पूजा कर रहा था। इन्द्रद्युम्न ने कहा कि यह मंदिर मेरा है, आप कौन हैं? उत्कल के राजा माधव ने कहा– आप कौन हैं, और क्या चाहते हैं? इन्द्रद्युम्न ने अपनी बात और सच्चाई को बताने की बहुत कोशिश की लेकिन माधव राजा के सामने उनकी एक न चली। अंत में, नारदजी ने सविस्तार माधव राजा को इन्द्रद्युम्न की जानकारी दी, फिर भी वह तब तक मानने के लिए तैयार नहीं हुआ जब तक कि कोई साक्षी न मिले। उसी समय इन्द्रद्युम्न तालाब से हाथी के आकार का एक कछुआ जल के ऊपर आकर मानव की भाषा में बोला–''मैं साक्षी हूँ। मैं कच्छप गवाही देता हूँ। यह मंदिर मालवा के राजा इन्द्रद्युम्न ने बनवाया था।''

यह सुनते ही माधव ने वह मंदिर इन्द्रद्युम्न को सौंप दिया। उस दिन के बाद से लोग उस राजा को 'गाल माधव' कहकर पुकारने लगे। चूँकि माधव उस समय का बहुत बड़ा भक्त था, नारदजी ने इन्द्रद्युम्न से कहा कि प्राण प्रतिष्ठा समारोह में उसे भी सादर आमंत्रित किया जाये। ब्रह्माजी ने स्वयं आकर प्राण प्रतिष्ठा की। तब से वहाँ महाप्रभु जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की पूजा शुरू की गई।

प्राण प्रतिष्ठा समारोह की समाप्ति के पश्चात् ब्रह्माजी ने इंद्रद्युम्न से कहा– ''वत्स! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ। कोई वर माँगो।'' इन्द्रद्युम्न ने कहा– ''भगवान! मैं चाहता हूँ कि यह मंदिर किसी व्यक्ति का न रहकर पूरी मानव जाति का मंदिर हो और उस मंदिर के प्रमुख देव सम्पूर्ण ब्रह्मांड के स्वामी, जगत् के नाथ श्री श्री जगन्नाथजी महाराज हों। मुझे आप यह भी वरदान दें कि मेरा कोई उत्तराधिकारी न हो जो भविष्य में यह कह सके कि यह मंदिर मेरा है। ब्रह्माजी तथास्तु कहकर इंद्रलोक चले गए।

कहा जाता है कि विश्ववसु, ललिता और विद्यापति की निःस्वार्थ भक्ति व्यर्थ नहीं गई। विश्ववसु ने जगन्नाथजी की सेवा दइतापति के रूप में, ललिता ने प्रसाद पकाकर शबर के रूप में, विद्यापति ने पति महापात्र के रूप में जगन्नाथजी की सेवा की और भक्त जीवन को सार्थक बनाया।

3. बड़े भाई बलभद्र पर महाप्रभु की कृपा

एक दिन जगन्नाथ जी के बड़े भाई बलभद्र जी ने जगन्नाथ जी से उनकी पत्नी लक्ष्मीजी की शिकायत की। उन्होंने कहा– ''जगन्नाथ, मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता कि लक्ष्मी दिन-दिन भर मन्दिर से बाहर रहे। कल रात की बात है, वह चण्डाल के घर गई और रात को लौटकर आई भी नहीं। देखो, या तो तुम लक्ष्मी को कहो कि वह घर से बाहर न जाये, नहीं तो मैं मन्दिर छोड़कर कहीं ओर चला जाऊँगा। सोच लो, तुम्हें कौन प्रिय है!'' जगन्नाथ जी ने सदा की तरह बड़े भाई की आज्ञा को शिरोधार्य किया और कहा– ''ठीक कहते हैं आप बड़े भाई, ऐसी स्त्री के लिए मेरे यहाँ कोई जगह नहीं है। आने दीजिए लक्ष्मी को, उसे तुरंत कहता हूँ कि या तो घर से बाहर जाना बंद करे, नहीं तो यह घर हमेशा के लिए छोड़कर चली जाये।''

ठीक उसी समय चण्डाल के यज्ञ से लक्ष्मी जी लौटीं और देर से आने का कारण भी बताया। लेकिन यहाँ तो बड़े भाई बलभद्र जी की बात रखनी थी। जगन्नाथ जी ने कहा, ''देखो लक्ष्मी, बड़े भैया की शिकायत है कि तुम घर से हमेशा बाहर रहती हो और मैं भी सोचता हूँ कि यह ठीक नहीं है। इसलिए तुम आज से घर छोड़कर कहीं ओर चली जाओ। इसी में तुम्हारी भी भलाई है और बड़े भैया की भी।''

लक्ष्मी जी मुस्करायीं और कहा– ''ठीक है, अगर मैं तुम्हें पसंद नहीं हूँ, मेरा व्यवहार तुम्हें अच्छा नहीं लगता है, तो मैं चली जाती हूँ, लेकिन सोच लो, फिर मेरे पास कभी मत आना और न यह कहना कि मैं वापस आऊँ।'' यह कहकर लक्ष्मी जी चली गईं।

रात के बाद सुबह हुई। सुबह से दोपहर होने को आई, लेकिन कोई पुजारी न तो जगन्नाथ जी को, न ही बलभद्र जी को पूछने के लिए आया और न उन्हें भोग आदि दिया। दोनों भाई निराश होकर सोचने लगे– करें तो क्या करें? अपने पेट की आग कैसे बुझाएँ? दोनों ने विचार किया कि वे वेश बदलकर मन्दिर से बाहर जाएँगे और कुछ खा लेंगे।

दोनों भाई वेश बदलकर चल दिए। रास्ते में कुछ दूर जाने के बाद एक भुंजावाला मिला। दोनों बहुत खुश हुए और विचार किया कि चलो कुछ तो खाने को मिला। उन्होंने भुंजेवाले से भुंजे की मांग की। भुंजावाले ने थोड़ा-सा भुंजा देना चाहा, लेकिन लक्ष्मीजी ने पवन देवता को मना कर दिया। अतः चाहकर भी दोनों भाई भुंजा नहीं खा सके।

अब दोनों भाई चले समुद्र के किनारे। वहाँ पहुँचने पर देखा कि एक महिला गरीबों को भोजन करा रही है। पहले तो सोचा कि चलकर वे भी खा लें, कौन देखता है, लेकिन फिर विचार किया कि चलकर उससे चावल दाल आदि माँगते हैं और स्वयं खाना पकाकर खाते हैं। वे दोनों उस महिला के पास गए और चावल-दाल आदि की मांग की। महिला ने सब कुछ दे दिया, लेकिन अग्नि देवता को हिदायत दे दी कि वे जले नहीं। दोनों आग जलाते-जलाते थक गए, लेकिन आग जलने का नाम नहीं ली।

लाचार होकर फिर वे उन्हीं गरीबों की पंक्ति में दोनों भाई खड़े हो गए जहाँ वह महिला अपने हाथों से खाना खिला रही थी। जब उन दोनों की बारी आई तो देखते हैं कि वह महिला कोई और नहीं साक्षात् लक्ष्मी जी हैं। दोनों ने अपनी गलती स्वीकार की और लक्ष्मी जी को मनाकर वापस श्रीमन्दिर ले आए।

इस प्रकार अनेक रूपों में प्रभु जगन्नाथ पुरी में अपनी लोक लीलाओं के साथ आस्था और विश्वास के इष्टदेवता, गृहदेवता, राज्य देवता और विश्वदेवता के रूप में अपने श्रीमंदिर की रत्नवेदी पर विग्रह के रूप में अपनी बहन सुभद्रा और बड़े भाई बलभद्र के साथ विराजमान हैं। जो भी उनके दर्शन करता है, भाई-चारे, एकता, शांति, सर्वधर्म समन्वय और विश्वबन्धुत्व का महाप्रसाद पाता है। वास्तव में, ये भक्तों की आस्था और विश्वास के जगन्नाथ बने पुरी में बैठे हैं। अपने अपलक नेत्रों से दुनिया को हमेशा देखते हैं और भविष्य को सही रास्ता दिखला रहे हैं।

4. चण्डालिका पर महाप्रभु की कृपा

मेदिनापुर, पश्चिम बंगाल में एक वृद्ध महिला रहती थी। वह जन्मांध थी। नाम था उसका चण्डालिका। लेकिन नाम के विपरीत काम। वह जगन्नाथजी की अनन्य भक्तिन थी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह पुरी की रथयात्रा का आनंद ले। प्रभु जगन्नाथ को रथ पर बैठे देखे।

चण्डालिका रथयात्रा के पावन दृश्य को देखने के लिए मेदिनापुर से पुरी के लिए चल पड़ी। चलते-चलते आखिर रथयात्रा के दिन पुरी के निकट पहुँच ही गई। उधर तीनों विग्रह अलग-अलग पहण्डी के साथ अपने-अपने रथ पर विराजमान हो चुके थे। पूजा आदि की औपचारिकाएँ पूरी हो चुकी थी। राजा छेरा पोंहरा का दायित्व भी निभा चुके थे। रथ के चक्के की धुरी के साथ मोटे-मोटे रस्से बांधे जा चुके थे। 'जय-जगन्नाथ'' की शंखध्वनि हो चुकी थी, लेकिन आश्चर्य की बात कि रथ के चक्के लाख कोशिशों के बावजूद भी टस से मस नहीं हो रहे थे। राजा ने आदेश दिया कि खींचने के लिए हाथी और घोड़े लगाए जाएँ, फिर भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राजा ने मुख्य पुजारी से पूछा। मुख्य पुजारी ने प्रभु जगन्नाथ के नाम का स्मरण किया, तब उसे एक दिव्य वाणी सुनाई दी कि प्रभु की एक भक्तिन पुरी के पास पहुँच चुकी है। उसे आदर के साथ जब तक लाया नहीं जाएगा और वह अपने हाथों से रथ के चक्कों का जब तक संस्पर्श नहीं करेगी, तब तक रथ नहीं चलेगा।

चण्डालिका चलते-चलते थक चुकी थी। उसे विशेष सवारी से श्रद्धापूर्वक लाया गया। फूल-माला आदि निवेदित किया गया और फिर रथ के चक्कों का जैसे ही उसे संस्पर्श कराया गया, देखते ही देखते रथ चल पड़ा। श्रद्धालु भक्त समुदाय ने एक साथ जय-जयकार किया-''जय जगन्नाथ। जय-जय चण्डालिका!!''

5. सदना कसाई पर महाप्रभु की कृपा

बहुत दिन पहले की बात है। सदना नाम का एक कसाई था, लेकिन धार्मिक विचारों वाला था। जहाँ भी भजन-कीर्तन आदि होता था, सदना

अवश्य जाता था। उसकी सांस-सांस में प्रभु जगन्नाथ का नाम था।

सदना के पास बाट (नाप-तौल के लिए) के रूप में एक पत्थर था जिससे वह अपने ग्राहकों को मांस तौल कर देता था, लेकिन सदना को यह पता नहीं था कि जिसे वह बाट के रूप में प्रयुक्त करता है, वह सचमुच एक शालिग्राम है।

एक बार उसकी दुकान से होकर एक महात्मा गुजरे। उसने देखा कि मांस-विक्रेता के तराजू पर शालिग्राम है। उन्होंने सदना से शालिग्राम की मांग की और उसके लिए वह मुँह माँगा रुपया भी देने के लिए तैयार हो गये। सदना ने भी सोचा कि जब एक महात्मा पत्थर के टुकड़े को माँगता है तो एक पत्थर के टुकड़े में क्या रखा है, उसे वह दे दे और दूसरा फिर तैयार कर ले। सदना ने खुशी-खुशी शालिग्राम महात्मा को सौंप दिया।

लेकिन प्रभु को सदना से अलग होना अच्छा नहीं लगा। उस रात महात्मा को स्वप्न आया कि मुझे सदना के पास छोड़ दो। मुझे उसके बिना अच्छा नहीं लगता। सुबह उठकर महात्मा ने शालिग्राम सदना को वापस दे दिया। वापस शालिग्राम लेते समय सदना ने महात्मा से सब कुछ जान लिया। वह अपने कसाई के धंधे को छोड़-छाड़कर पुरी चला आया।

जगन्नाथ पुरी दूर थी इसलिए सदना रास्ते में एक गृहस्थ के यहाँ ठहर गया। लेकिन इच्छा तो थी कि कब पुरी पहुँचे और प्रभु जगन्नाथ के दर्शन करे। उस गृहस्थ परिवार में पति-पत्नी दो ही प्राणी थे। जैसे ही रात हुई, वह गृहिणी सदना के सुंदर रूप और शरीर को देखकर उसके पास आई और उससे अपनी काम वासना शांत करने के लिए कहा। सदना ने विनीत भाव से कहा कि माताजी मैं आपका पुत्र हूँ। यह काम मैं कभी नहीं कर सकता। गृहिणी वापस चली गई और बाहर आकर उसने अपने पति की हत्या कर दी। फिर सदना के पास गई और फिर वही आग्रह किया कि देखो हम दोनों के अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है। लेकिन उस गृहिणी का कोई असर सदना पर नहीं पड़ा। उसने फिर साफ इन्कार कर दिया।

गृहिणी ने नया नाटक शुरू किया। रात के अंधेरे में वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी–''अरे गाँव वालों! आओ, देखो! यात्री ने मेरे पति की

हत्या कर दी है, अब यह मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है। मेरी रक्षा करो गाँव वालों!''

गाँव के लोग इकट्ठे हो गए लेकिन सदना के चेहरे पर भय नाम की कोई चीज ही नहीं थी। वह तो प्रभु जगन्नाथ में ही रमा रहा।

उसे पकड़ कर न्यायाधीश के सामने लाया गया। न्यायाधीश ने निर्णय सुनाया कि इस यात्री के दोनों हाथ काटकर इसे गाँव से बाहर कर दिया जाय।

सदना के दोनों हाथ काट दिए गए। फिर भी सदना ने खुशी-खुशी पुरी के लिए प्रस्थान किया। जगन्नाथ जी के आग्रह करने का ढंग देखिए। उन्होंने मुख्य पुजारी को स्वप्न में आकर कहा कि सदना कसाई नाम का मेरा एक भक्त पुरी आ रहा है। उसके दोनों हाथ कटे हुए हैं, उसे आदरपूर्वक मेरे पास लाया जाए।

एक पालकी सजाई गई। बाजे-गाजे के साथ सदना को श्रीमंदिर में फूल-माला के साथ लाया गया। यह देख सदना के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह मंदिर में प्रवेश करते ही आत्म विभोर हो गया और कटे हाथ उठाकर- ''हरि-हरि बोल, बोल हरि बोल'' करने लगा। उसने जैसे ही हाथ ऊपर किए, उसके दोनों हाथ ठीक हो गए। कीर्तन करते-करते सदना वहीं सो गया। स्वप्न आया- ''पहले जन्म में तुम काशी में एक ब्राह्मण थे। एक कसाई गाय के पीछे भाग रहा था। तुमने गाय के गले में दोनों भुजाएँ डालकर उसे रोका। वह कसाई उस गाय को पकड़कर ले गया और उसकी हत्या की। गाय ही स्त्री रूप में में जन्मी और पूर्व जन्म का बदला लेने के लिए उसका गला काट दिया। तुमने भुजाओं से गाय को रोका था, इस अपराध में तुम्हारे हाथ कटे।'' प्रभु ने स्वप्न में उसे दर्शन दिए। सदना की शंका का समाधान हुआ।

6. भक्तकवि सालबेग पर महाप्रभु की कृपा

सालबेग नाम का एक भक्त था। वह था तो मुसलमान लेकिन उसके जीवन में ऐसी घटना घटी कि वह हमेशा के लिए भगवान जगन्नाथ का भक्त बन गया।

सालबेग के पिता का नाम लालबेग था। लालबेग को एक बार मुगल बादशाह ने जगन्नाथजी का पता लगाने के लिए पुरी भेजा। लालबेग अपनी सेना लेकर पुरी की तरफ चल दिया। रास्ते में एक छोटा-सा गाँव था। उस गाँव पर पहले उसने आक्रमण किया। गाँव के लोगों को उसकी सेना ने तबाह कर दिया। लालबेग की नजर उस गाँव की सुन्दर ब्राह्मणी विधवा युवती पर पड़ी। उसे उठा लिया और बाद में उससे शादी कर ली। कुछ दिनों बाद उस ब्राह्मणी विधवा से सालबेग नामक एक पुत्र पैदा हुआ। पुत्र बड़ा होकर एक सैनिक बना।

एक दिन सालबेग युद्ध करते हुए घायल हो गया। तलवार की चोट इतनी गहरी थी कि घाव भरने का नाम ही नहीं ले रहा था। अनेक वैद्यों से इलाज कराया, लेकिन जख्म और बढ़ता ही गया। एक दिन सालबेग की माँ ने कहा कि बेटा तुम प्रभु जगन्नाथ के नाम का स्मरण करो और पुरी जाकर महाप्रसाद का सेवन करो। माँ की आज्ञा मानकर सालबेग पुरी आया और महाप्रभु के भजन में लीन हो गया। प्रभु उसकी भक्ति से प्रसन्न हुए और देखते ही देखते उसका घाव भर गया।

कहा जाता है कि उस दिन से ही सालबेग प्रभु जगन्नाथ के भजन लिखने और गाने लगा। यह भी कहा जाता है कि एक बार रथयात्रा के दिन सालबेग के लिए प्रभु जगन्नाथ का रथ रुक गया था और तब तक रथ टस से मस न हुआ, जब तक सालबेग वहाँ न आया।

7. रामभक्त तुलसी पर महाप्रभु की कृपा

एक बार राम के अनन्य भक्त तुलसी को पता चला कि पुरी के श्रीमंदिर में भगवान राम के दर्शन होंगे। चूँकि वे राम भक्त थे, काशी से पुरी के लिए चल दिए। जब पुरी पहुँचे तो सोचा कि देखें किस प्रकार जगन्नाथजी के मंदिर में मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं।

तुलसीदास मंदिर में पधारे। सामने रत्नवेदी पर जगन्नाथजी, सुभद्राजी और बलभद्रजी के विग्रहों को देखकर निराश हो गये। बिना पूजा किए ही वापस लौट आए। कारण यह था कि वे तभी अपना मस्तक भगवान के सामने झुकाते

थे, जब देखते थे कि सामने उनके राम धनुष और बाण लिए हुए हों।

शाम हो चुकी थी। धीरे-धीरे रात का अंधकार भी फैल गया। तुलसी चलते-चलते पुरी से 8 किलोमीटर दूरी मालती पाटपुरी पहुँचे। सोचा कि रात हो गई है इसलिए यहीं रुक जाते हैं। सुबह उठकर काशी के लिए प्रस्थान करेंगे। एक गृहस्थ परिवार से रात भर ठहरने को आग्रह कर रात में उसी के यहाँ ठहर गए। भूख तो जोरों की लगी थी, लेकिन लाचार थे। ऊपर से राम के दर्शन न होने के कारण निराश भी थे।

जब सोने के लिए चले तो एक वृद्धा ने महाप्रसाद से भरी थाली उनके सामने रख दी और कहा कि यह महाप्रसाद प्रभु जगन्नाथ ने आपके लिए भेजा है। आप ग्रहण करें। तुलसी ने महाप्रसाद ग्रहण किया और फिर चल पड़े श्रीमंदिर की ओर। मंदिर का फाटक बंद होने वाला था। सामने रत्नवेदी थी। अब देखते हैं कि उनके सामने जगन्नाथजी के रूप में धनुष-बाण लिए राम, सुभद्राजी के रूप में जनकनंदिनी सीता और बलभद्र के रूप में लखन लाल विराजमान हैं। तुलसी ने अपना मस्तक उन विग्रहों के सामने झुका दिया और अब उनके मुँह में 'जय श्री राम' नहीं, बल्कि 'जय जगन्नाथ' था।

8. पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव पर महाप्रभु की कृपा

रथयात्रा के समय पुरी नरेश को रथों पर झाड़ू लगाते देखकर दक्षिण भारत के कांची के नरेश ने उन्हें चाण्डाल कहा, क्योंकि झाड़ू लगाने का काम चाण्डाल ही करता है।

जैसे ही यह खबर पुरी नरेश को मिली, वे आग-बबूला हो गए। उन्होंने कांची राजा से बदला लेने के लिए कांची पर आक्रमण कर दिया। जबकि एक बार रथयात्रा का पावन दृश्य देखने के लिए कांची का राजा अपनी सुन्दर राजकुमारी के साथ पुरी आया था और उसी समय पुरी नरेश ने उस सुन्दर राजकुमारी से विवाह करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। लेकिन होता वही है जो प्रभु जगन्नाथ चाहते हैं।

पुरी नरेश ने कांची पर आक्रमण तो किया लेकिन कांची विजय नहीं

मिल सकी। पुरी नरेश ने अनेक बार अपनी सैन्य शक्ति मजबूत कर कांची पर आक्रमण किया, लेकिन हर बार निराशा ही हाथ लगी।

अंत में, लाचार पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव ने प्रभु जगन्नाथ से प्रार्थना की। प्रभु, पुरुषोतम देव पर प्रसन्न हुए और अपने बड़े भाई बलभद्र जी के साथ अस्त्र-शस्त्रों सहित सैनिक के रूप में कांची विजय के लिए चल दिए।

दोनों भाई, जगन्नाथ जी और बलभद्र जी दो अलग-अलग सफेद व काले घोड़े पर सवार होकर युद्ध जीतने के लिए चल दिए। वे जैसे ही चिल्का झील के पास पहुँचे, उन्हें जोर की प्यास लगी। उन दोनों ने इधर-उधर नजरें दौड़ाईं लेकिन कुछ भी नजर नहीं आया। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि थोड़ी दूर पर एक वृद्ध महिला दही बेच रही है। उन्होंने उस महिला से दही खरीदा और अपनी प्यास बुझाई। जब दोनों चलने लगे तो पैसों के बदले अपनी अंगूठी निकाल उस ग्वालिन को दे दी और यह कहा कि जब पुरी नरेश अपने सैनिकों के साथ इधर से आएँ तो उन्हें वह यह अंगूठी दिखा दें।

कुछ देर बाद पुरी नरेश पुरुषोत्तम देव अपनी सेना के साथ उस दही बेचनेवाली वृद्ध महिला के पास आए। उस औरत ने अंगूठी दिखाते हुए सारी कहानी बताई। पुरुषोत्तम देव को यह पहचानते देर नहीं लगी कि वह अंगूठी और किसी की नहीं बल्कि महाप्रभु जगन्नाथ की थी क्योंकि उन्होंने अनेक बार श्रीमन्दिर की रत्नवेदी पर उसे देखा था। उन्होंने समझ लिया कि इस बार उनकी विजय सुनिश्चित है और अन्त में उन्हें महाप्रभु की कृपा से विजय भी मिली।

राजा उस ग्वालिन के नाम को अमर बनाना चाहते थे। उस ग्वालिन का नाम था मणिका। राजा ने चिल्का झील के पास कांची विजय के उपरांत एक गाँव बसाया और उसका नाम रखा माणिकपाटणा।

9. रघु केवट पर महाप्रभु की कृपा

पुरी से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर पुरी-भुवनेश्वर मार्ग पर पिपली नामक एक गाँव है। वहाँ रघु केवट नाम का एक केवट रहता था। उसका धंधा था मछली पकड़ना। वह बहुत बड़ा धर्मात्मा था।

एक दिन रघु ने सोचा कि जीव हत्या करना पाप है। फिर क्या था? मछली पकड़ना बंद कर दिया। इधर उसके घर की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई। वृद्धा माँ मरणासन्न हो गई, पत्नी और बच्चे भूख से मरने लगे।

फिर एक दिन उसे गीता का उपदेश याद आया- "कर्म ही धर्म है।" दूसरे दिन अपना जाल ठीक-ठाक किया और चल पड़ा फिर मछली पकड़ने। जाल जल में डाल दिया। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जाल में कोई भारी और बड़ी मछली फँस गई है। उसने जाल बाहर निकाला। देखा कि एक बड़ी भारी रोहू मछली है। वह बहुत खुश हुआ। सोचा इस मछली को बेचकर वह अपनी माँ का इलाज कराएगा। लेकिन यह क्या? जैसे ही उस मछली को मारना चाहा, मछली आदमी के स्वर में 'जगन्नाथ! जगन्नाथ!!' की रट लगाने लगी। रघु ने सोचा कि यह प्रभु जगन्नाथ की कैसी लीला है।

रघु ने मछली को पास वाले एक जंगल के तालाब में छोड़ दिया और अपने को प्रभु जगन्नाथ की भक्ति में लीन कर लिया। रघु सूखकर कांटा हो गया।

एक दिन एक ब्राह्मण के वेष में प्रभु जगन्नाथ उसके पास आये। उन्होंने रघु से पूछा- "भक्त यह क्या कर रहे हो? क्या ऐसा करने से प्रभु जगन्नाथ मिलेंगे?" रघु ने कोई उत्तर नहीं दिया। जैसे ही उसने अपनी आँखें खोली, देखा कि प्रभु जगन्नाथ साक्षात् वहाँ खड़े हैं। रघु ने उन्हें प्रणाम किया। जगन्नाथजी ने कहा- "वत्स, मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। माँगो, क्या वर माँगते हो?" रघु केवट चरणों में गिर पड़ा और कहा- "हे पतितपावन! अगर आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें आजीवन अपनी भक्ति का ही मुझे वरदान दें।" 'तथास्तु' कहकर प्रभु अंतर्ध्यान हो गए।

10. बंधु महांति पर महाप्रभु की कृपा

जाजपुर, कटक में बंधु महांति नाम का एक गरीब भक्त था। एक बार वह अपने बाल-बच्चों के साथ पुरी आया। तब तक उसके गाँव में भूखमरी फैल चुकी थी। उसने सोचा कि वह अब पुरी में ही बस जाएगा। लेकिन प्रभु जगन्नाथ की कैसी लीला है! उस बेचारे को भीख तक न मिली। वह अपने बाल-बच्चों सहित भूखों मरने लगा। एक दिन प्रभु

जगन्नाथ स्वयं उसके सामने प्रगट हुए और अपने हाथों से थाल परोस कर बंधु को दिया। थाल सोने का था। इस प्रकार प्रभु जगन्नाथ ने बंधु महांति को और उसके परिवार को भूखमरी से बचा लिया।

11. भक्त गंगाधर दास पर महाप्रभु की कृपा

कहानी राजा प्रतापरुद्र के समय की है। गंगाधर दास नाम का एक भक्त पुरी के निकट गोबिंदपुर गाँव में रहता था। पति-पत्नी दोनों प्रभु जगन्नाथ के अनन्य भक्त थे। दोनों का जीवन पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन में आराम से कट रहा था।

एक दिन गंगाधर की पत्नी श्रिया ने गाँव की एक महिला से कहा कि तुम तो जगन्नाथ की भक्त हो और बुढ़ापा तुम्हारा दरवाजा खट-खटाने लगा है और तुम्हें इस बुढ़ापे में भी कोई संतान नहीं है। श्रिया ने सोचा कि महिला ठीक ही कहती है। उसने गंगाधर को यह बात बताई। गंगाधर ने कहा कि संतान होने से मोह-माया में फँसना पड़ेगा, इसलिए संतान न होना ही अच्छा है। प्रभु जगन्नाथ का भजन करो जीवन कट जाएगा। लेकिन श्रिया भला क्यों मानती?

दूसरे दिन गंगाधर जब बाजार से घर लौटा तो उसकी गोद में भगवान जगन्नाथ का एक सुंदर विग्रह था। श्रिया को सौंपते हुए उसने कहा कि लो, अपने पुत्र को संभालो।

उस दिन के बाद से पति-पत्नी उस बच्चे से खेलने लगे। उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाते, रिझाते, घर खुशियों से भरा रहता।

एक दिन गंगाधर दास अपने काम के सिलसिले में बाहर दूसरे गाँव गया। प्रभु का वियोग सहन न हुआ। शीघ्र ही फल, मिठाई और रेशमी वस्त्र आदि लेकर वापस चला आया। मुख पर जगन्नाथ नाम था और पैरों में तेजी। संयोग से वह जल्दी-जल्दी आते हुए गिर पड़ा और प्रभु नाम जपते-जपते ही मर गया।

गाँववालों ने इसकी सूचना श्रिया को दी। वह पुत्र के पास जाकर रोने लगी और कहने लगी- 'हे पुत्र! मेरे सुहाग की रक्षा करना।' उस पुत्र ने कहा- 'माँ,

रोती क्यों हो? जाओ! पिताजी सो रहे हैं। उन्हें उठाकर मेरे पास लाओ।'

आवाज सुनकर श्रिया के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब वह बाहर गई, जहाँ लोगों की अपार भीड़ थी, उसके पति जैसे लेटे हुए थे। उसने उन्हें उठाया और "हरबोल" कहते हुए गंगाधार दास उठे और बच्चों की तरह दौड़ते हुए अपने घर में घुसे, लेकिन सिंहासन पर वह पुत्र नहीं था।

कहा जाता है कि दोनों पति-पत्नी उस दिन के बाद पुरी चले आए और प्रभु जगन्नाथ की सेवा में लीन हो गए।

12. दासिया बाऊरी पर महाप्रभु की कृपा

ओड़िशा राज्य के बालूगाँव, चिल्का में एक जुलाहा रहता था। उसका नाम था दासिया बाऊरी। दासिया बाऊरी जगन्नाथजी का अनन्य भक्त था। उसका अपना नारियल का बगीचा था। बगीचे में मीठे-मीठे अनेक किस्म के फल थे।

एक दिन कुछ मीठे नारियल लेकर वह पुरी चला आया। सोचा, भगवान जगन्नाथ के दर्शन भी होंगे और उन्हें नारियल का भोग भी वह लगा लेगा। लेकिन भक्त जो सोचता है, क्या भगवान वही करते हैं? श्रीमन्दिर के पण्डों ने उसे नीच जाति का बताकर मन्दिर में जाने से रोक दिया। बेचारा बाऊरी करे तो क्या करे? मन्दिर के सिंहद्वार पर खड़े होकर प्रभु जगन्नाथ से विनती की- "हे प्रभु! दर्शन दो! मेरे नारियल भोग स्वरूप स्वीकार करें।" प्रभु ने श्रीमन्दिर से हाथ बढ़ाकर बाऊरी के नारियल फल खाये। देखने वाले दंग रह गए। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

दासिया बाऊरी से जुड़ी एक और सुन्दर कथा है। दासिया बाऊरी ने एक दिन अपने गाँव से होकर जाते हुए एक ब्राह्मण को देखा। पूछने पर पता चला कि वह प्रभु जगन्नाथ के दर्शन के लिए श्रीक्षेत्र जा रहा है। दासिया बाऊरी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने बड़े ही विनम्र शब्दों में ब्राह्मण से निवेदन किया कि जब वे प्रभु के दर्शन आदि कर लें, तो उसके भी नारियल प्रभु को चढ़ा दें और उनसे यह भी कहें कि प्रभु आपके भक्त दासिया बाऊरी ने आपके लिए इसे भेजा है।

ब्राह्मण पुरी पहुँचा। मन्दिर में जगन्नाथजी के दर्शन किए। पण्डों की सहायता से भोग आदि लगाया। जब चलने लगा तो याद आया कि दासिया बाऊरी ने भगवान के लिए नारियल दिया है। ब्राह्मण वहीं खड़ा हो गया और प्रभु से प्रार्थना की– ''हे प्रभु! क्षमा करो। दासिया बाऊरी ने आपके लिए नारियल भेजा है। कृपया आप इसे ग्रहण करें।'' जगन्नाथ ने अपनी चमचमाती आँखें खोल हाथ बढ़ाकर मुस्कराते हुए दासिया के नारियल को स्वीकार कर लिया। है न सच्ची घटना।

जय जगन्नाथ!

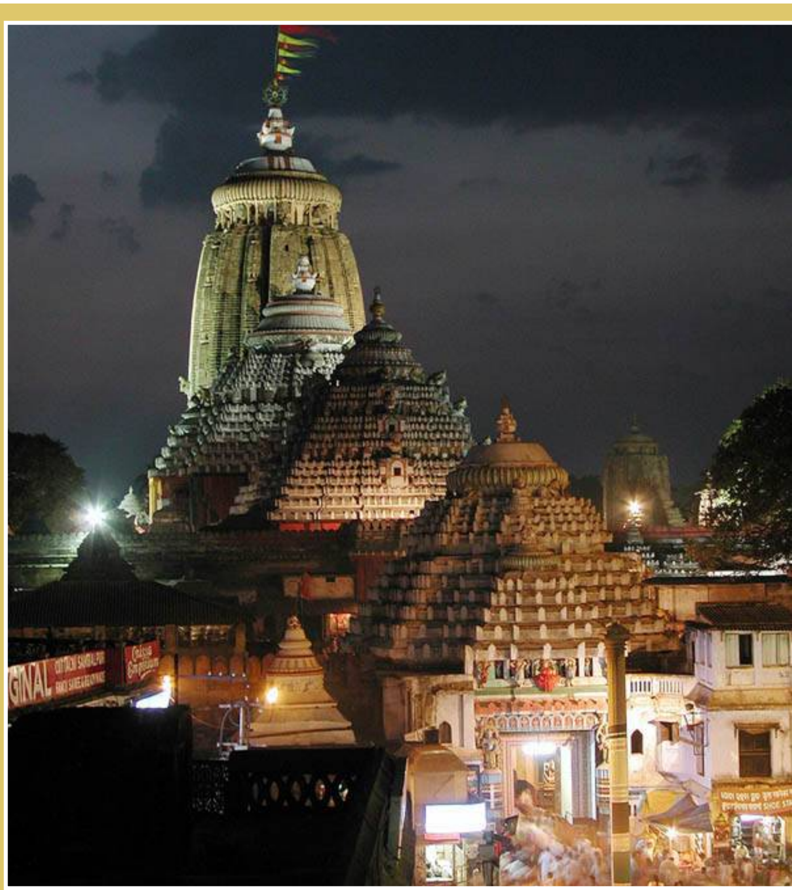

कुछ प्रमुख स्थल

साक्षी गोपाल– पुरी जाते समय रास्ते में पिपली से करीब 14 किलोमीटर दूर पर साक्षीगोपाल आता है। इसे सत्यवादी भी कहा जाता है। यहाँ प्रसिद्ध साक्षीगोपाल जी का मन्दिर है। इस मन्दिर में श्री कृष्ण–राधा की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के पास में उत्कलमणि गोपबन्धु दास जी के सत्यवादी वनविद्यालय का स्मरण दिलाने वाला मौलसिरी पेड़ों का वन है। साक्षीगोपाल के सम्बन्ध में दो कथाएँ हैं। एक तो लोककथा और दूसरी ऐतिहासिक है। कहा जाता है कि एक बार दो ब्राह्मणों में झगड़ा हुआ। इनमें से एक ब्राह्मण के अनुरोध पर गवाही देने के लिए श्रीकृष्ण भगवान मथुरा पुरी से यहाँ आए। श्रीकृष्ण जी का कहना था– ''तुम आगे चलो, मैं पीछे–पीछे चल रहा हूँ। लेकिन कभी पीछे मत देखना।'' रास्ते में किसी कारणवश ब्राह्मण के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने पीछे मुड़कर देखा। पीछे मुड़कर देखने से भगवान श्रीकृष्ण का शरीर पत्थर की मूर्ति बन गया। इस घटना के बाद कांची के राजा ने एक मन्दिर बनवाया और वहाँ इस मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इतिहास के अनुसार, उत्कल नरेश दाक्षिणात्य के युद्ध में विजयी होकर वहाँ से यह मूर्ति अपने साथ ले आए। पहले इस मूर्ति की प्रतिष्ठा कटक के बाराबाटी किले में की गई थी। बाद में यवनों द्वारा उत्कल साम्राज्य का पतन हो गया। विधर्मी यवनों के डर से इस मूर्ति को बाराबाटी से लेकर खोर्द्धा के पास रथीपुर में रखा गया, फिर वहीं के कुन्तलाबाई नामक एक दूसरी जगह उनकी प्रतिष्ठा की गई। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए भारत के विभिन्न स्थानों से लोग यहाँ आते हैं। कार्तिक महीने की आँवला नवमी के दिन राधा पाद–दर्शन हेतु साक्षीगोपाल में काफी भीड़ होती है।

कोणार्क– कोणार्क का सूर्य मन्दिर विश्वविख्यात है। भुवनेश्वर से बस द्वारा पुरी से पिपली होकर कोणार्क जाना पड़ता है। पुरी से यह करीब 53 किलोमीटर की दूरी पर है। समुद्र के किनारे से एक रास्ता और है। अधिकांश लोग इस रास्ते से चन्द्रभागा होकर भी कोणार्क जाते हैं। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र शाम्बदेव ने यहाँ सूर्योपासना करके कुष्ठ व्याधि से मुक्ति पाई थी। उसी दिन से वहाँ सूर्यदेव की पूजा शुरू हुई।

कोणार्क मन्दिर का निर्माण सन् 1250 में उत्कल के सूर्यवंशी नरेश लांगुला नरसिंह देव जी ने किया था। 1200 शिल्पियों की कड़ी मेहनत से 12 साल में इस मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा हुआ था। इस मन्दिर पर की गई खुदाई और कारीगरी कौशल को देखकर कोई भी आदमी दंग रह जाता है। आज केवल इस विश्वप्रसिद्ध मन्दिर का टूटा हुआ अंश है। फिर भी मन्दिर का यह खण्डहर उत्कल के पूर्व गौरव और यश की याद दिलाता है।

कोणार्क को स्कन्दपुराण में 'सूर्य क्षेत्र', ब्रह्म पुराण में 'कोणादित्य', शाम्ब पुराण में 'मैत्रवन', कपिल संहिता में 'रवि क्षेत्र', प्राची माहात्म्य में 'अर्कतीर्थ' आदि नाम से जाना जाता है।

कोणार्क मन्दिर के पास नवग्रह मन्दिर है। यहाँ पत्थर निर्मित नवग्रहों का विग्रह है। ये विग्रह बहुत सुन्दर और आकर्षक हैं। कोणार्क मन्दिर के पास एक म्यूजियम है। यहाँ कोणार्क के कुछ प्राचीन कला–कौशलयुक्त पत्थरों को रखा गया है। विश्व–प्रसिद्ध कोणार्क मन्दिर आज भी लाखों–करोड़ों दर्शकों के मन में कौतूहल पैदा करता है।

कोणार्क मंदिर से करीब 2 किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रभागा तीर्थ है। यहाँ माघ महीने की सप्तमी तिथि के दिन एक बड़ा मेला लगता है। लाखों दर्शकों का यहाँ समागम होता है, जो स्नान के साथ सूर्योदय का आनन्द भी लेते हैं।

भुवनेश्वर– भुवनेश्वर को मन्दिर का शहर कहा जाता है। पुरी से करीब 59 किलोमीटर की दूरी पर यह बसा है। यहाँ अनेक मन्दिर हैं। इसे एकाम्र तीर्थ भी कहा जाता है। पुराने भुवनेश्वर में लिंगराज मन्दिर, राजारानी मन्दिर, बिन्दु सागर, केदार–गौरीकुण्ड, मुक्तेश्वर मन्दिर, अनन्त वासुदेव मन्दिर, मौसी माँ मन्दिर आदि अनेक मन्दिर हैं और साथ ही खण्डगिरि, उदयगिरि, धवलगिरि आदि पहाड़ हैं। जहाँ क्रमशः प्राचीन जैन–मूर्तियों तथा बौद्ध कीर्तियों का खण्डहर है। नए भुवनेश्वर में सचिवालय, राजभवन, उत्कल विश्वविद्यालय, रवीन्द्र मण्डप, म्यूजियम, विज्ञान केन्द्र, कलिंग स्टेडियम, कलिंग स्टुडियो, तारामण्डल एवं ओड़िशा कृषि विश्वविद्यालय आदि हैं।

लिंगराज मन्दिर– लिंगराज मन्दिर का निर्माण सन् 1050 ई. में हुआ था। उत्कल में केशरी वंशी नरेश लालतेन्दु केशरी ने इसका निर्माण करवाया था। इस मन्दिर का कला–कौशल सबको चकित करता है। यहाँ शंकर भगवान का विग्रह है। बिल्व पत्र और तुलसी पत्रों से इस विग्रह की पूजा होती है। इनके सामने गरुड़ और वृषभ हैं। अनन्त वासुदेव मन्दिर इस मन्दिर के पास ही है। यहाँ

प्रसाद तैयार किया जाता है और बेचा जाता है। चैत्र महीने की शुक्लाष्टमी (अशोकाष्टमी) में यहाँ शिवजी की रथयात्रा होती है। हजारों-लाखों दर्शकों की भीड़ लगती है। श्री जगन्नाथ जी की तरह लिंगराज शंकर भगवान् की बहुत बड़ी प्रसिद्धि है।

प्रभु जगन्नाथ के प्रथम सेवक– गजपति महाराज दिव्यसिंह देव जी पुरी के वर्तमान नरेश, गजपति और महाराज हैं। आप प्रभु जगन्नाथ के प्रथम सेवक हैं। आप चलन्ति विष्णु के रूप में जाने जाते हैं। आप प्रतिवर्ष रथ-यात्रा के शुभ अवसर पर छेरा पहँरा का दायित्व वहन करते हैं। श्रीमन्दिर में महाप्रभु जगन्नाथ के अनेकानेक पर्वोत्सवों में भी आप अपने दायित्व का बखूबी निर्वाह करते हैं।

आप दिल्ली विश्वविद्यालय से वकालत की डिग्री (एल.एल.बी.), नॉर्थ्-वेस्टर्न विश्वविद्यालय, शिकागो, संयुक्त राज्य अमेरिका से एल. एल.एम. की डिग्री लिए हैं।

आप ओड़ीशा राज्य के सभी पवित्र सामाजिक और सांस्कृतिक उत्सवों में पूरी दिलचस्पी लेते हैं। ओड़ीशा के सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान में आपका योगदान सचमुच अभूतपूर्व है।

भक्ति गीत

नारद की बात मान प्रभु अवतार ले लिये,
बलराम और सुभद्राजी को साथ ले लिये,
आदेश रात सुन इन्द्रद्युम्न चल दिये,
हे दारु ब्रह्म आपको यह रूप दे दिये।।1।।

जय दारु ब्रह्म ब्रह्मेश्वर, जय विग्रह रूप नरेश्वर।
जय सर्वरूप जगदीश्वर, जय कर्म रूप लोकेश्वर।।2।।

कलियुग के अवतार हैं दाता,
दर्शन-धर्म के भाग्य विधाता,
द्वार तुम्हारे जो भी आता,
मनवांछित फल वो है पाता।
जय दारु ब्रह्म ब्रह्मेश्वर .....।।3।।

न है जाति-धर्म का बंधन,
यहाँ नहीं किसी का क्रंदन,
सुख-शांति भाव का नन्दन,
हम करते नित प्रभु वंदन।
जय दारु ब्रह्म ब्रह्मेश्वर ......।।4।।

–अशोक पाण्डेय

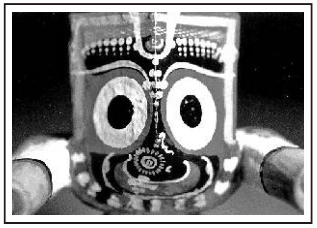

भक्ति गीत

नीलमाधव, हे जगन्नाथ स्वामी
नयन पथगामी, मैं तेरा चरण मांगूँ।
बड़े ठाकुर, हे दीनबन्धु नामी
हे अंतर्यामी, मैं तेरी शरण चाहूँ।

धन नहीं चाहूँ, जन नहीं चाहूँ
नाम न चाहूँ मैं, मान न चाहूँ
चाहूँ मैं तेरे दर्शन, करूँ मैं अर्चन,
करूँ मैं नर्तन, मैं तेरी शरण चाहूँ।

आज का दिन है बड़े पुण्यवाला
आज का दिन है यात्रा रथवाला
आज झूम-झूम गायन करूँ
आज चूम-चूम दर्शन करूँ, मैं तेरा चरण मांगू।

–अशोक पाण्डेय

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Sidelights on History and culture of Orissa – Edited by M.N. Das
2. The Cult and Culture of Lord Jagannath by Daityari Panda, Sarat Chandra Panigrahi
3. Shri Jagannath Puri Past & Present by G.M. Tripathy
4. Lord Jagannath in Indian Religious life by B. Mullick, ed. Dr. H.C. Das
5. Legends of Jagannath Puri by R.K. Das
6. Indian Culture and Cult of Jagannath by Late Pandit Binayak Mishra
7. Lord Jagannath by Surendra Mohanty
8. A Glimpse into Oriya Literature by Chittaranjan Das
9. Conservation of Lord Jagannath Temple, Puri by Archaeological Survey of India, Bhubaneshwar Circle
10. Orissa Review
11. Jagannath Puri by Sri Balaram Mishra
12. A brief look at Sri Jagannath Temple, Puri by Mohini Mohan Tripathy
13. Our Lord by Prof. K.C. Pal
14. Orissa by Hotel & Restaurants Association of Orissa
15. Hidden Treasure of Vastu Shilpa Shastra and Indian Traditions, by Darebal Muralidhar Rao
16. Jagannath Puri, Published by Sir Jagannath Temple Managing Committee, Puri
17. Sri Jagannath Temple – At a Glance, by Prof. Gopal Chandra Tripathy
18. The Car Festival, Puri, 1990 – I & PR Deptt., Govt. of Orissa
19. श्री जगन्नाथ पुरी – श्री जगन्नाथ मंदिर परिचालना समिति, पुरी द्वारा प्रकाशित
20. हमारे पूज्य तीर्थ – राजीव
21. भक्त कथाएँ – राजेन्द्र शर्मा
22. गगनांचल – भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद, नई दिल्ली

23. भारतीय साहित्य कोश – संपादक, डॉ. नगेन्द्र
24. श्रीक्षेत्र: श्री जगन्नाथ (ओड़िआ) – संकलन, डॉ. ब्रजमोहन महान्ति एवं श्री सुभाष चन्द्र महान्ति
25. युगे युगे नवकलेवर (ओड़िआ) – डॉ. सदानन्द चौधुरी
26. नवकलेवर: विस्तृत विचार (ओड़िआ) – श्री शुकदेव महान्ति
27. श्रीजगन्नाथङ्कर नवकलेवर विधान (ओड़िआ) – डॉ. पूर्णचंद्र मिश्र
28. जय जगदीश हरे – डॉ. शंकर लाल पुरोहित
29. भारतीय संस्कृति को उड़ीसा की देन – डॉ. नत्थूलाल गुप्त, डॉ. शंकर लाल पुरोहित एवं अशोक पाण्डेय
30. स्कन्दपुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर

भक्त का हृदय भगवान की बैठक है।

शुद्धियों में आत्म शुद्धि का ज्यादा महत्व है।

शीघ्र प्रकाशित

भारतीय संस्कृति की अद्वितीय रचना
'भक्तों के भगवान- जगन्नाथ'

लेखक- अशोक पाण्डेय